ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

रामधारीसिंह दिनकर का

कुरुक्षेत्र

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - II

Block - 3

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

हिन्दी एम .ए . प्रीवियस - द्वितीय पत्र

KSOU
MGM -06

Hindi
Paper / Course - II

ब्लाक सं

3

" रामधारीसिंह दिनकर का कुरुक्षेत्र "

Unit No. 9 to 12
अनुक्रमणिका : - **Page No.**

इकाई 09 रामधारीसिंह दिनकर की जीवनी, व्यक्तित्व-कृतित्व 1 - 26

इकाई 10 कुरुक्षेत्र की प्रेरणा और ऐतिहासिकता 27 - 42

इकाई 11 महाभारत के युद्ध के कारण 43 - 62

इकाई 12 कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताएँ 63 - 94

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष
क.रा.मु.वि.विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

बी.जी.चन्द्रलेखा संयोजिका
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग (से.नि.)
क.रा.मु.वि.विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ वी.गणेश संपादक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग (से.नि.)
ज्ञानभारती, बेंगलूर विश्वविद्यालय
बेंगलूर - 56.

पाठ्यक्रम की लेखिका

डॉ.एम.विमला
रीडर, हिन्दी विभाग
ज्ञानभारती, बेंगलूर वि.विद्यालय
बेंगलूर.

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित ।
सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **रजिस्ट्रार (प्रशासन)** द्वारा मुद्रित व प्रकाशित ।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थि - बन्धु ,

कोर्स एक में आपने **कर्नाटक संस्कृति और कन्नड साहित्य** का अध्ययन किया।

कोर्स दो में आपने आधुनिक काव्य के अंतर्गत इकाई 1 से 8 तक राट्रकवि मैथिली शरण गुप्त से विरचित महाकाव्य साक़ेत के बारे में सविस्तार रूप से अध्ययन किया और जानकारी भी प्राप्त कर लीं।

अब आप इकाई 09 से 12 तक रामधारी सिंह दिनकर से रचित कुरुक्षेत्र काव्य के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं। इकाई 09 में रामधारीसिंह दिनकर की जीवनी व्यक्तित्व - कृत्तित्व के बारे में सविस्तार के साथ अध्ययन करने जा रहे हैं। तत्पश्चात इकाई 10 में कुरुक्षेत्र की प्रेरणा और ऐतिहासिकता के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं। इकाई 11 में महाभारत के युद्ध के कारण के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं और इकाई 12 में कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताओं के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

डॉ. कांबले अशोक
अध्यक्षा,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

BLOCK - 03

Unit 09

रामधारीसिंह दिनकर की जीवनी, व्यक्तित्व - कृतित्व

09.0 उद्देश्य

09.1 प्रस्तावना

09.2 कथासार

09.3 पहला सर्ग

09.4 दूसरा सर्ग

09.5 तीसरा सर्ग

09.6 चौथा सर्ग

09.7 पाँचवाँ सर्ग

09.8 छठा सर्ग

09.9 सातवाँ सर्ग

09.10 बोध प्रश्न

09.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक कवि रामधारीसिंह दिनकर की जीवनी का अध्ययन करेंगे।

- कवि दिनकर की व्यक्तित्व के बारे में भी जान सकेंगे।
- रामधारी सिंह दिनकर की कृतित्व के बारे में अध्ययन करेंगे।
- कुरुक्षेत्र का कथासार भी जान सकेंगे।
- विशद रूप से एक-एक सर्ग का अध्ययन भी करेंगें।

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थी आपने कोर्स - २ में इकाई १ से ८ तक मैथिलीशरण गुप्तजी की जीवनी, व्यक्तित्व, कृतित्व और साकेत की कथावस्तु - साकेत का महाकाव्य, साकेत के मार्मिक प्रसंग साकेत का चरित्र-चित्रण आदि के बारे में

जान लिया। साकेत की ऊर्मिला और उसकी विरह वेदना के बारे में अध्ययन किया। अब इकाई ०६ से १५ तक आप दिनकर के प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र का अध्ययन करने जा रहे है। इस काव्य की रचना सन् १९४६ में ही हुआ था। नाम से ही यह स्पष्ट है कि काव्य-कृति का संबंध महाभारत की कथा से है। आधुनिक कवि दिनकर महाभारत की कुरुक्षेत्र कथा को इस दृष्टि से उसे चुना है कि आज भी जीवन में उसकी सार्थकता है। कुरुक्षेत्र पढ़ते समय रचनाकार की समझ और अपने समाज से जुड़ाव और मौलिक दृष्टि आदि पर विश्लेषण करेंगे। कवि की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचय पाने के उपरांत उसके युग, परिवेश आदि के बारे में चर्चा होगी। कुरुक्षेत्र का कथासार भी दिया गया है। पूरी रचना आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। आप से संपूर्ण काव्य के बारे में प्रश्न पूछेंगे।

09.2 दिनकर की जीवनी

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के सिमरिया घाट नामक ग्राम में संवत् १९०८ में हुआ। दिनकर का जन्म एक साधारण कृषक परिवार में होने के कारण जमींदारी शोषण और आर्थिक संघर्षों को झेलना पड़ा। जब वे दो वर्ष के थे तब पिता का देहांत भी हो गया। दिनकर जी का बाल्यकाल भारतीय गाँव के उस जूझते-झेलते माहौल में बीता था जो गंगा नदी की भयानक बाढ़, दुर्भिक्ष महामारी और सामंती अत्याचारों का भुक्त भोगी साक्षी था।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव से कुछ -दूर पाठशाला में हुई थी। वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की परीक्षा पास करने के पश्चात् उन्होंने मोकामा घाट स्थान से सन १९२८ तक मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की और फिर पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् १९३२ में बी. ए. आनर्स पास किया। विद्यार्थी जीवन में ही उनका परिचय संस्कृत, राष्ट्रीयता, स्वदेश और स्वभाषा आदि जैसे प्रश्नों से हो गया था। राष्ट्रीय चेतना की कविता लिखने की इच्छा उनके मन में पैदा हुई थी।

09.2.1 व्यक्तित्व

दिनकर के कवि जीवन का आरंभ तीसरे दशक से होता है। उनका प्रथम काव्य-संग्रह **रेणुका** यद्यपि सन् १९३५ में छपा। दिनकर के कवि के व्यक्तित्व की बनावट में जिन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाही उनमें प्रमुख है - भारतीय स्वाधीनता संग्राम, साम्राज्यवादी - पूँजीवादी शोषण से कराहता ग्रामीण कृषक वर्ग और छायावाद युगीन पृष्टभूमि। वे छायावादोत्तर काल के प्रमुख कवियों में से एक हैं और स्वयं उन्हीं के शब्दों में **" छायावाद की ठीक पीठ पर आए "** स्वयं दिनकर कहते है, पंत के सपने हमारे हाथ में आकर उतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावाद काल में थे किन्तु द्विवेदी युगीन अभिव्यक्ति की शुभ्रता हमलोगों के पास आते-आते कुछ रंगीन अवश्य हो गई। अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की विरासत हमें आप से आप प्राप्त हो गई। दिनकर की कविताओं में ओजस्विता का महत्व अत्यन्त विशेषरूप में है। दिनकर की कविता में जीवन- समाज परिचित परिवेश की प्रधानता है। उनकी कविता की बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने हिन्दी कविता को जन सामान्य के बीच प्रतिष्ठित किया है यहाँ कविता जनता में और जनता कविता में आगई है। उनकी काव्य संवेदना के विकास में प्राचीन भारतीय संस्कृत सोहित्य की परंपरा और आधुनिक बंगाल साहित्य ने योगदान दिया था। इसके अलावा उर्दू के कवि काजी नज़रल इस्लाम का प्रभाव तथा बंगाली साहित्य का भी प्रभाव हम दिनकर जी की कविताओं में देख सकते हैं। जोश का क्रान्तिकारी आक्रमक स्वर और गर्जन ने भी उनकी काव्य चेतना को प्रभावित किया है।

दिनकर जी राजनीतिक विचारधाराओं में कार्ल माक़्र्स की प्रगतिशील क्रान्तिकारी धारा से प्रभावित है। दिनकर की चेतना मूलतः सामाजिक चेतना है अन्याय और अव्यवस्था के विरोधी और उसका प्रहार भी किया है। दिनकर की विशेषता यही है अपने चार दशकों में फैले रचनात्तमक काल में वे समय-समाज से जुड़े रहे और उसके प्रति प्रतिबद्ध रहे। वे किसी वाद के कवि न होकर राष्टीय सांस्कृतिक चेतना के कवि ही है। सन् १९४५ मे दिल्ली और मास्को

कविता की सृजन उन्होंने की इसमें राष्ट्रीय हितों के कारण अन्तराष्ट्रीय हितों को नीचे नजर अंदाज दिखाया है। गाँधीवादी अहिंसा दर्शन के विरोधी होते हुए भी गाँधी के प्रति निष्ठावान ही थे। गाँधीजी की हत्या पर लिखी बापू के प्रति कविता में जितने मर्मस्पर्शी शब्दों में इस देश की कृतघ्नता को धिक्कारते है उतना शायद अन्य किसी हिन्दी के कवि ने धिक्कारा होगा !

मैथिलीशरण गुप्त जी के बाद राष्ट्रकवि के रूप में सम्मान पानेवाले एक मात्र कवि दिनकर है।

कुरुक्षेत्र में अन्याय और अत्याचार को चुपचाप स्वीकार करने की बजाए उसका सशस्त्र उत्तर देने की बातें वह कहते हैं।

कुरुक्षेत्र की भूमिका में स्वयं दिनकर जी कहते है - " **कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञान के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है।** " प्रकृति के प्रति उनका प्रेम बाल्यावस्था ही से था । उनके ग्राम तथा उसके आस-पास के प्राकृतिक सौंदर्य का प्रभाव उनके किशोर हृदय पर पड़ा। बाल्यावस्था से ही उन्हें काव्य और साहित्य में रुचि थी। दर्शन, राजनीति तथा इतिहास में भी उन्हें विशेष रुचि थी। सन् १९२१ के राष्ट्रीय-आंदोलन का उनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

दिनकर जी का जीवन सरल और अकृत्रिम था । वैसा ही उनका स्वभाव था। परिश्रमी तथा अध्ययनशील तो वे छोटी आयु ही से थे। हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त उन्होंने उर्दू, बंगला तथा संस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया। सन् १९५० में उन्होंने लंगटसिंह कालेज मुजपफरपुर में हिन्दी विभागध्याक्ष का पद संभाला। सन् १९५२ में राज्य सभा के सदस्य मनोनीति हुए और १९६४ तक इस पदपर रहे। १९६४ में भागलपुर के उपकुलपति नियुक्त हुए। किन्तु एक वर्ष बाद उपकुलपति पद से त्यागपत्र दिया और भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार नियुक्त हो कर दिल्ली आगए। अंत तक दिल्ली में ही थे। उनका देहांत २४ आप्रैल १९७४ में चैन्ने (मद्रास) में हुआ।

09.2.2 कृतित्व

सन् १९२९ में आपका प्रथम ग्रंथ '**प्रण - भंग**' प्रकाशित हुआ । यह उनकी प्रारम्भिक रचना थी अतः प्रौढ़ता का इसमें न होना स्वाभाविक था । पर उनका दूसरा काव्य-ग्रंथ '**रेणुका**' जो कुछ समय बाद ही प्रकाशित हुआ, उसका स्वागत साहित्यिक जगत् ने किया । सन् १९३९ में उनका तीसरा ग्रंथ प्रकाशित हुआ और वह हिंदी के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाने लगे। वे मैथिलीशरण गुप्त से प्रारम्भ में बहुत प्रभावित हुए थे और अब हिंदी जगत उन्हें भी राष्ट्रीय कवि के रूप में मानने लगा।

सन् १९३५ में बिहार प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन के सभापति होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी '**हिमालय**' शीर्षक कविता पर उन्हें स्वर्णपदक प्राप्त हुआ । उसके बाद ही उनकी दूसरी प्रसिद्ध कविता '**नई दिल्ली**' हिंदी-जगत के सामने आई।

दिनकर जी हिन्दी के एक प्रतिभा - सम्पन्न उदीयमान कवि हैं । पद्य तथा गद्य दोनों प्रकार के ग्रन्थों की आपने रचना की है । प्रबन्ध - काव्य में **कुरुक्षेत्र** आपका अत्यधिक प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ है । दूसरा प्रबन्ध-काव्य '**रश्मिरथी**' है जो खंड - काव्य है। इसमें कर्ण के चरित्र का चित्रण हुआ है।

मुक्तक - काव्य में आपके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं -

1) **रेणुका** - यह दिनकर जी की प्रारंभिक कृति है । यह 'भारत-भारती' को आदर्श बनाकर लिखी गई है ।

2) **हुंकार** - सन् १९३१ में प्रकाशित हुई । इसमें कवि ने अपने क्रान्तिकारी विचार ओजपूर्ण भाषा तथा शैली में लिखे हैं ।

3) **रसवंती** - सन् १९४० में प्रकाशित श्रृंगार रस की कविताओं का संग्रह है ।

4) **द्वन्द्वगीत** - १५१ पदों के इस ग्रंथ में प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा विलास और वैराग्य के उठने वाले "भावों" का अन्तर्द्वन्द दिखाया गया है ।

5) **धूप-छांह** - यह किशोरों के उपयुक्त काव्य-ग्रन्थ है ।

6) **सामधेनी** - इस काव्य-ग्रन्थ में राष्ट्रीय तथा क्रान्तिकारी विचारों की कवितायें संगृहीत हैं ।

7) **बापू** - महात्मा गाँधी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके सम्बन्ध में लिखी तीन कविताओं का संग्रह है ।

8) **इतिहास के आँसू** - इसमें कवि की ऐतिहासिक रचानाओं का संग्रह है ।

9) **दिल्ली** - नई दिल्ली पर चार ओज - पूर्ण कविताओं का संग्रह है ।

10) **नीम के पत्ते** - इसमें व्यंग्यात्मक कविताओं का संकलन है ।

11) **नील कुसुम** - यह महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह उनकी नवीनतम कविताओं का संग्रह है ।

12) **ऊर्वशी** - ।

13) **रश्मिरथी** - ।

14) **परुशुराम की प्रतीक्षा** - ।

15) **हरे को हासिम** - आदि काव्य

उन्होंने '**मिर्च की मजा**' तथा '**सूरज का ब्याह**' शीर्षक दो बालोपयोगी काव्य - ग्रन्थ लिखे हैं। बालोपयोगी दो गद्य - ग्रन्थ उनके '**चितौड़ का साका**' तथा '**भारत की सांस्कृतिक** कहानी हैं ' ।

गद्य-साहित्य के लेखक के रुप में भी दिनकर जी प्रसिद्ध हैं। **अर्धनारीश्वर** उनका प्रसिद्ध निबन्ध - (गद्य) ग्रन्थ है । उनके आलोचनात्मक निबन्धों का संकलन '**मिट्टी की ओर**' ग्रन्थ में हुआ है । उनके आधुनिक निबन्धों का संग्रह '**रेती के फूल**' हैं। हमारी '**सांस्कृतिक एकता**' उनका प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ है। '**संस्कृति के चार अध्याय**' भी उनका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

आप अपने संस्कृति-सम्बन्धी ग्रंथ के लिए राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत किए गए हैं । 'पद्म-भूषण' की पदवी सरकार द्वारा आपको मिली है । आप पार्लियामेंट के कांग्रेसी सदस्य हैं। आप राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं ।

आपने देश के अतीत गौरव का गान किया है, वैसे ही जैसे मैथिली शरण गुप्त जी ने अपने 'भारत-भारती' ग्रंथ में किया है । वर्तमान के निर्माण में अतीत के गौरव से प्रेरणा मिलती है । आपको अपने देश के प्राचीन गौरव तथा संस्कृति पर अभिमान है । अतीत के प्रति आपको श्रद्धा है, स्नेह है । देश की वर्तमान पतितावस्था पर कवि को क्षोभ है । अपने अतीत के गान के द्वारा वे देश के वर्तमान का भी सिंहावलोकन करते हैं । वर्तमान को अतीत की सहायता से वह महत् बनाने का प्रयत्न करते हैं।

इस राष्ट्रीय कवि की दूसरी विशेषता उनकी क्रान्ति की भावना है । प्राचीनता के प्रति कवि को मोह है, पर अपने देश के वर्तमान को वे कभी विस्मृत नहीं करते हैं। दोनों कालों की तुलना करने पर उनके हृदय को ग्लानि और क्षोभ होता है । देश की वर्तमान दुरवस्था तभी दूर होना संभव है जब देश क्रान्ति का सहारा ले । इसी से कवि अपनी रचनाओं में क्रान्ति का आवाहन करते हैं। अतः दिनकर पहले तो देश के अतीत के गौरव का गान करते हैं, फिर अतीत की तुलना वर्तमान की अधःपतित अवस्था से करते हैं और तत्पश्चात् वे क्रान्ति का आवाहन करते हैं जिससे वर्तमान दुरवस्था का नाश हो। पर उनकी क्रान्ति विनाश के लिए नहीं, निर्माण के लिए है - हाँ यह निर्माण विनाश की नींव पर होगा ।

उनकी तीसरी विशेषता उनकी प्रगतिवादिता है । रूढिवादिता तथा प्रचलित परिपाटी पर उनका विश्वास नहीं है । वह वर्तमान समय की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के पक्षपाती हैं । हिन्दी में 'प्रगतिवाद' का रूप जो आजकल हम देख रहे हैं, दिनकर की कविताओं में हमें मिलता है ।

इस प्रकार हम दिनकर के ग्रन्थों तथा उनकी भावनाओं और प्रवृत्तियों को देश के लिए वरदान-स्वरूप उपयोगी और वाञ्छनीय मानते हैं ।

अब प्रगतिवादिता के सम्बन्ध में हम कुछ समझ लें । 'कुरुक्षेत्र में प्रगतिवाद के स्पष्ट दर्शन होते हैं' इस कथन को प्रमाणित करने के लिए हमें प्रगतिवाद के सम्बन्ध में ठीक से समझना पड़ेगा ।

09.3 कवि दिनकर और कुरुक्षेत्र का कथासार

कुरुक्षेत्र की भूमि पर युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व, दोनों ओर की सेनाओं को लड़ने के लिए प्रस्तुत खड़ी देखकर अर्जुन को शंका हुई थी कि इस युद्ध से व्यर्थ की नर-हत्या और नाश होगा । क्या इससे श्रेष्ठ यह नहीं होगा कि भिक्षा-वृत्ति करके जीवित रहा जाय ? आत्मीयों के रुधिर से सने ऐश्वर्य को भोगना क्या पाप न होगा ? अर्जुन की शंका का समाधान भगवान कृष्ण ने उसी युद्ध - भूमि में किया । उनका यह उपदेश ही श्रीमद्भगवत्गीता में संगृहीत है । बिल्कुल वैसी ही शंका महाराज युधिष्ठिर को युद्धोपरान्त कुरुक्षेत्र की भूमि की लाशों से पटी और रुधिर से सनी देखकर हुई थी। उनका हृदय ग्लानि, शोक, पश्चात्ताप और हाहाकार से भर गया था । वे अपने से पूछते थे कि क्या हमने यह पाप नहीं किया ? क्या हम त्याग और आत्म-बलिदान का परिचय देकर सन्यासी नहीं हो सकते थे ? क्या हमारी छिपी हुई ऐश्वर्य भोगने की लालसा और व्यक्तिगत सुखों को भोगने की स्वार्थपूर्ण इच्छा ही इस नर-संहार और भीषण महाभारत का कारण नहीं हुई है ?

पांडवों को विजय अवश्य प्राप्त हुई थी, किन्तु वह विजय कितनी महँगी थी । महाभारत की भयंकरता और सर्वनाश का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अनेक विद्वानों का मत है कि भारत को जो आगे चल कर पराधीनता भोगनी पड़ी उसका कारण महाभारत ही था । कलाकारों, वीरों, योद्धाओं, विज्ञान-वेत्ताओं और विद्वानों सभी का इतनी अधिक संख्या में संहार हुआ कि कला तथा विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र को अत्यधिक क्षति पहुँची - कोई भी इस हानि से बच नहीं सका ।

एक ओर विजयोल्लास के आनन्द तथा मद में डूबे पाण्डव तथा उनके समर्थक थे और दूसरी ओर लाशों से पटी रणभूमि और श्मशान । देश के अनेक स्थान निर्जन तथा हतश्री-से हो गए थे । चारों ओर वीभत्सता तथा अप्रिय दृश्यों की भरमार थी । माताओं तथा विधवा पत्नियों के करुणोत्पादक विलाप हृदय को बेध देते थे। धन तथा जन की ऐसी हानि के पश्चात् व्यथित युधिष्ठिर का चिंतित तथा दुखी होना स्वाभाविक था । विजयोल्लास मनाए जा रहे थे और युधिष्ठिर को कोई हार्दिक उल्लास, कोई उत्साह न था । उन्हें वे सब नीरस लग रहे थे । नीरस लगते भी क्यों नहीं । भाँजे और निकट सम्बन्धी अपने निकट सम्बन्धियों के हाथों मरे थे । इस गृह-युद्ध ने परिवार के एक अंग को दूसरे अंग से लड़ाया था और इन दोनों पक्षों में से किसी न किसी का साथ भारत के ही प्रायः सभी राज्यों ने ही नहीं, वरन् विदेशियों ने भी दिया था ।

युधिष्ठिर सोच रहे थे कि क्या ही अच्छा होता, यदि युद्ध प्रारंभ न होता। भले ही हम घाटे में रहते, पर धन-जन की इतनी हानि तो न होती, इतने वीर, पराक्रमियों का नाश तो न होता, इतनी माताएँ पुत्रहीना तथा तरुणियाँ विधवा तो न होंगीं। ऐसे ही अनेक प्रश्न उनके हृदय में उठ रहे थे और ठीक से किसी का उत्तर उन्हें नहीं मिल रहा था । उनका हृदय प्रश्नों का समाधान खोजने में बेचैन था । तभी उन्हें शर-शय्या पर पड़े भीष्म पितामह की याद आ गयी। उन्होंने निश्चय किया कि मुझे मानसिक शान्ति, भीष्म जी से मिलने के बाद ही संभवतः मिल सकेगी। अपने प्रश्नों का समाधान मुझे उनसे मिलेगा, मेरी मानसिक अशान्ति को दूर करने में वे ही समर्थ हो सकते हैं।

उन्होने अपनी शंका को शर - शय्या पर पड़े हुए भीष्म-पितामह से कहा।

भीष्म-पितामह युधिष्ठिर की महानता, हृदय की विशालता तथा सात्विक भावनाओं से परिचित थे । युधिष्ठिर के हृदय की वेदना की गहराई और सचाई को उन्होंने देखा और समझा । वे जानते थे कि युधिष्ठिर समस्त जाति की कल्याण-कामना के भाव से प्रेरित हैं । इनकी वेदना के पीछे मानव की कल्याण-कामना बोल रही है । यह व्यक्ति इस महाभारत का कारण तथा दोषी

को मान रहा है । काश संसार के सभी लोग ऐसे ही मानवता को, जन-
ण को अपने व्यक्तिगत लाभ, स्वार्थ तथा सुख-सुविधा से ऊपर स्थान
: तो विश्व स्वर्ग हो जाय । मानवता का कल्याण तब तक संभव नहीं है,
क सब लोग युधिष्ठिर की भाँति नहीं सोचेंगे-समझेंगे । और उसी युद्ध-
ाम में भीष्म ने युधिष्ठिर को महाभारत-युद्ध की सार्थकता और औचित्य पर
उपदेश दिया था। दोनों की विचार-धाराओं तथा वार्त्तालापों का ही संग्रह
इसमें है।

युधिष्ठिर में सन्यास - भावना जागृत हो रही थी, किन्तु भीष्म जी जन - कल्याण को दृष्टि में रखकर नहीं चाहते थे किं धर्मराज राज्य - लक्ष्मी को ठुकरा कर साधु बन जायँ और निर्जन वन-पर्वत का रास्ता लें । अब तो जो होना था हो चुका। इस दशा में यदि युधिष्ठिर राज्य - सिंहासन की उपेक्षा करेंगे तो राज्य तथा प्रजा का जो कल्याण तथा समृद्धि इनके राज्य-शासन में संभव है, उससे प्रजा वंचित रह जायगी । अतः मन ही मन उनके त्याग, करुणा, दया-भावना, सहानुभूति, कोमलता, तप, अहिंसा तथा निवृत्ति-परायणता के विचारों की तारीफ करते हुए भी उन्होंने इन सब गुणों का राजनीति की दृष्टि से खंडन किया। उन्होंने कहा कि तुममें ऐसे विचार इस समय उठ रहे हैं क्योंकि तुम युद्ध की विभीषिका, भीषणता तथा बीभत्सता से व्याकुल हो गए हो, व्यक्तिगत रूप से उपर्युक्त गुणों का महत्व सर्व-मान्य है, पर राजनीति दूसरी वस्तु है । तुम राजनीति की दृष्टि से अपने प्रश्नों पर सोचो-विचारो और जो तुम यह सोच रहे हो कि युद्ध के कारण तुम हो, यह भी बात गलत है। युद्ध का कारण तुम नहीं हो । पाण्डवों के कारण ही युद्ध नहीं हुआ है। समाज में उच्छृंखलता, व्यक्तिगत स्वार्थ, विलास-वैभव की लिप्सा तथा दम्भ आदि बहुत बढ़ गये थे। लोग कर्त्तव्य से अधिक महत्व अधिकार को देने लगे हैं । सात्त्विकता, परस्पर का विश्वास, आत्मत्याग की भावना आदि की जनता या राजाओं में कमी हो गई थी। युद्ध के कारणों की नींव बहुत गहरी थी । जनता आपस में प्रतिशोध की भावना से दग्ध हो रही थी और वह भी बहुत दिनों से! युद्ध तो

होता ही है। तुम न लड़ते तो युद्ध का कोई और बहाना हो जाता । अतः तुम्हारा यह सोचना कि युद्ध के उत्तरदायी केवल पाण्डव हैं, या समस्त उत्तरदायित्व में सबसे बड़ा हाथ पाण्डवों का रहा है, गलत है । यह सत्य है कि पाण्डवों का बहुत बड़ा और प्रमुख हाथ-युद्ध में रहा है, पर यदि तुम या पाण्डव चाहते तो भी युद्ध अनिवार्य था, उसे तुम लोग चाहते हुए भी रोक नहीं सकते थे । यह विस्फोट तो होता ही है। अब न होता तो कुछ दिनों बाद होता, पर होता अवश्य।

युद्ध कभी एकाएक नहीं होता । युद्ध के पीछे अनेक कारण निहित होते हैं। किसी विशेष कारण के ही फल-स्वरूप युद्ध हुआ हो, यह समझना गलत है। अनेक कारण जब एक साथ एकत्रित हो जाते हैं तब युद्ध का ज्वालामुखी फूटता है। युद्धों के कारण राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, भौगोलिक तथा सामयिक भी होते हैं और जिनके हाथों में राज्य की सत्ता और शक्ति होती है उनकी विशेष प्रवृत्तियाँ तथा मान्यताएँ भी होती हैं । व्यक्तिगत स्वार्थों में संघर्ष तथा पारस्परिक प्रतिशोध की भावनाओं का भी युद्धों के पीछे प्रमुख हाथ रहता है ।

इस महाभारत युद्ध को ही लो । इसके पीछे ही देखो कितने कारण थे । अन्याय का प्रतिशोध लेना ही चाहिए, दुष्कर्मी को दंड देना ही चाहिए, दुष्कर्म का बदला लेना ही चाहिए । यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो धर्म और न्याय के गले पर छुरी चल जाती है । भीतर अनेक षडयंत्र परिपक्व होते रहते हैं और तब वे षडयंत्र ही समय पाकर युद्ध के रूप में हमारे समक्ष आते हैं । कौरवों ने क्या - क्या षडयंत्र तुम लोगों के विरुद्ध नहीं किये । कितना अपमान तुम लोगों का उन्होंने किया था। कितना अधर्म, अन्याय और अत्याचार तुम लोगों पर उन्होंने किया था! भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी खींचना ही एक मात्र कारण हो सकता था जिसके फल-स्वरूप तुम कौरवों से युद्ध करते । फिर उन्होंने तो धोखे और छल से जुआ खेल कर तुम्हारा राज्य छीन लिया और अज्ञातवास समाप्त होने की शर्त पूर्ण होने पर भी तुम्हारे राज्य का भाग देने का प्रस्तुत नहीं हुए थे। तुम लोगों को लाक्षागृह में जला कर मार डालने का प्रयत्न तथा भीम

को जहर देकर मार डालने का प्रयत्न कौरवों की घोर नीचता थी । ऐसी दशा में यदि पाण्डवों में प्रतिशोध की भावना जगी तो यह स्वाभाविक भी था और उचित भी। तुम योगी थे, गृहस्थ थे और वह भी राजा के कर्त्तव्य क्या होते हैं, यह तुम जानते ही हो।

तुम कहते हो कि केवल कुछ लोगों की दुष्टता और पाप या अत्याचारों के फल को अनेक निर्दोषों को भोगना पड़ा । पापी कौरव हो सकते हैं, पर जो मारे गए हैं, वे सब ही तो पापी नहीं थे या कम से कम कौरवों के पाप के भागी नहीं थे। बहुतों ने कौरवों का साथ दिया, अब भले प्रसन्नता से - या बाध्य होकर, व्यक्तिगत स्वार्थ या लाभ के कारण या कर्त्तव्य - भावना से, यह दूसरा प्रश्न है। पर जो अन्यायी, अत्याचारी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करता है वह भी गलती, भूल या पाप कहता है और फिर जब जंगल में आग लगती है तो छोटे-बड़े सभी पेड़ पौधों, पक्षियों को जलना पड़ता है - और निश्चय ही दुर्बल और छोटी वस्तुओं तथा प्राणियों को अधिक तथा पहले। यही बात युद्ध के सम्बन्ध में भी समझो।

राजनीति की दृष्टि से तो इससे लाभ ही होता है । निर्बल तथा अशक्त मर-मिट जाते हैं और सबल तथा शक्तिशाली ही कुछ बच जाते हैं । जो बच जाते हैं वे ही अधिक क्षमता तथा उपयोगिता के साथ विश्व के क्रम की निरंतरता को स्थिर रखते हैं । बचे हुए सशक्तों के कंधों पर विश्व की परंपरा को सुरक्षित रहने का उत्तरदायित्व होगा तो फल निश्चय ही उत्तम और लाभप्रद होगा । अतः युद्ध के साथ पाप और पुण्य के प्रश्न को घसीटना समझदारी नहीं है । पाप तथा पुण्य अपेक्षित शब्द हैं । महाभारत की भयंकरता को देख कर ही तुम्हारे हृदय में पाप और पुण्य के प्रश्न का उदय हुआ है । क्या पाप है और क्या पुण्य - यह समय तथा परिस्थिति के ऊपर आश्रित है । ठीक से जीवित रहने के लिए जो भी किया जाता है या किया गया है वह पुण्य है । युद्ध तथा हिंसा सदा पाप ही हो, अनुचित ही हो यह भला कौन कहेगा ? महाभारत - युद्ध में जो हिंसा तथा नरहत्या हुई है - वह पाप के अन्तर्गत नहीं है।

व्यष्टि और समष्टिगत धर्मों में अन्तर होता है । तप, त्याग, अहिंसा, करुणा आदि मानवोचित हैं, उपयोगी हैं, स्तुत्य हैं पर उनके प्रयोग के लिए उचित और अनुकूल अवसरों की आवश्यकता होती है । सदा और सब स्थानों पर उपर्युक्त गुण उचित और अनुकूल ही हों यह नहीं कहा जा सकता है । और फिर व्यक्ति के लिए सब गुण उपयोगी तथा आवश्यक हो सकते हैं, पूरे समाज के लिए, समष्टि के लिए नहीं । इन गुणों से व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति कोई कर सकता है पर समाज के ऊपर इन्हें थोपने का उसे कोई अधिकार नहीं है, विशेषकर उस स्थिति में जब समाज को उनसे कोई लाभ संभव न हो । अतः उपर्युक्त गुणों या विशेषताओं की जो तुम बात कर रहे हो उसका केवल मात्र कारण है - तुम्हारा भावुकता के वशीभूत होना । उन्हें परित्याग करके जो तुमने शारीरिक बल, शौर्य, साहस, वीरता का सहारा लिया, वह उचित भी था, और पुण्य भी !

भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि तुम युद्ध को निन्दनीय या बुरा कहते हो, केवल इसीलिए न कि यह शान्ति भंग करता है । पर सोचो, शान्ति की रक्षा के लिए ही युद्ध आवश्यक है । शान्ति कौन नहीं चाहता ? युद्ध तथा मारपीट कौन चाहता है ? पर पाँच दफे शासक तथा सबल शक्ति और क्षमता पाकर जनता का शोषण करते हैं, उनके अधिकारों को कुचल कर व्यक्तिगत स्वार्थ तथा विलास को प्राप्त करते हैं या प्राप्त करना चाहते हैं । शासक अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं । वे अपने कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं, केवल अपने अधिकारों को याद रखते हैं । तब जनता की मानसिक शान्ति भंग हो जाती है, देश में स्वाभाविक शान्ति नहीं रहती । इस स्वाभाविक शान्ति को फिर से लाने के लिए जनता संघर्ष करती है, अत्याचारियों से लोहा लेती है । यही तो युद्ध है।

शासक अपने पशु-बल से जनता में कृत्रिम शान्ति रखने का भरसक प्रयत्न करते हैं और कुछ समय तक वे इसमें सफल हो भी जाते हैं । पर यह शान्ति स्थायी नहीं हो सकती । जिस प्रकार से ऊपर की भूमि में हरियाली हो

पर धरती के नीचे ज्वालामुखी धधक रही हो वैसे ही जनता का हृदय भी धधकता रहता है। अत्याचार और पशुबल से अधिक समय तक जनता को अधिकारों से वंचित रखना संभव नहीं है । जनता के हृदय में शासकों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। और तब उसके फल-स्वरूप देर-सबेर क्रान्ति होना, युद्ध होना निश्चित है । अब युद्ध का उत्तरदायी कौन है ? युद्ध का उतरदायित्व किस पर है ? निश्चय ही जनता पर नहीं । इसका उत्तरदायित्व तो उत्तरदायित्वहीन शासन-सत्ता पर है जो युद्ध का कारण उपस्थित करती है ।

जो दूसरों के न्यायोचित अधिकारों को छीनेगा, अन्याय, अनाचार, अत्याचार करेगा, युद्ध का उत्तरदायी वह है । अतः युद्ध के उत्तरदायी पाण्डव नहीं, वरन् कौरव हैं । कौरव ही दोषी हैं, वे ही इस सर्वनाश के उत्तरदायी हैं ।

प्रत्येक मनुष्य न तो [illegible] हृदयता रखता है और न ऊँची सूझ-बूझ । भगवान कृष्ण के राजसूय-यज्ञ क[illegible] [illegible]रत के एकीकरण का उद्देश्य था, बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके भारत की शक्ति को प्रबल बनाना था। वहाँ युधिष्ठिर को सम्मान नहीं दिया गया था वरन् वह समस्त भारत का सम्मान था। युधिष्ठिर का सम्मान तो तत्कालीन राजाओं और समस्त भारत का सम्मान था। युधिष्ठिर के सम्मान को तत्कालीन राजाओं को अपना सम्मान मानना चाहिए था, समझना चाहिए था । पर ऐसा नहीं हुआ । युधिष्ठिर की बढ़ती तथा सम्मान से राजाओं के हृदयों में ईर्ष्या की ज्वाला धधक उठी और वे प्रतिहिंसा की बात सोचने लगे । यद्यपि युधिष्ठिर ने समस्त एकत्रित राजाओं का पर्याप्त आदर-सत्कार किया किन्तु ईर्ष्याग्नि के कारण उन्हें यह सब दिखाई नहीं दिया । महाभारत ने उन्हें अवसर दिया और अनेक राजा जो युधिष्ठिर से मन ही मन जले हुए थे दुर्योधन के पक्ष में हो गए । अतः यह स्पष्ट है कि युद्ध की पृष्ठभूमि बहुत पहले ही से तैयार थी, केवल उपयुक्त अवसर की देरी थी। युद्ध यकायक ही नहीं फूट पड़ा । भीतर ही भीतर विस्फोट के समस्त साधन एकत्रित हो रहे थे और पर्याप्त ताप के संचित हो जाने पर तब युद्ध का ज्वालामुखी यकायक ही फूट एड़ा ।

राजसूय-यज्ञ के एक वर्ष पश्चात् ही तो शकुनी की सम्मति से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा के लिए आमन्त्रित किया था तथा छल और कपट का सहारा लेकर युधिष्ठिर को हराया और अपमानित किया था । द्यूतक्रीड़ा तो एक योजना-मात्र थी। युद्ध के कारण तो पहले ही से प्रस्तुत थे और भविष्य दर्शी महापुरुष इसे जानते थे। तभी तो व्यास मुनि ने राजसूय-यज्ञ की समाप्ति पर समस्त राजाओं को सम्बोधित करते हुए भविष्यवाणी की थी कि तेरह वर्षों के पश्चात् युद्ध हो सकता है। अतएव आप लोग संयम और समझदारी से काम लें तथा सावधान हो जायँ। पर उनकी बात को राजाओं ने नहीं सुना । अतः हुआ वही जो नियति में था - अर्थात् महाभारत ।

भीष्म पितामह ने यह भी कहा कि यदि दोषी ही तुम अपने को समझते हो तो ठीक है, यों तो दोषी मैं स्वयं भी कम नहीं हूँ । इस युद्ध का कारण बहुत कुछ अंशों में मैं भी हूँ । प्रेम और कर्त्तव्य के चक्कर में मैं इस प्रकार अपने को जकड़ा हुआ पाता था कि मैं स्वयं उचित-अनुचित का ठीक निर्णय नहीं कर सका था। क्या उचित है और क्या अनुचित है - इस प्रश्न का समाधान, इसका ज्ञान मुझे युद्ध के प्रारम्भ तथा युद्ध-काल तक नहीं हो सका । वास्तविकता मेरे समझ में अब आयी है जब सब कुछ समाप्त हो गया है । तुरंत - बुद्धि ने मेरा साथ नहीं दिया था । पाण्डवों के प्रति मेरा प्रेम था पर कौरवों के प्रति मेरा कर्त्तव्य था और मैं कर्त्तव्य की ओर ही झुक गया । द्रौपदी के चीर - हरण से ऐसा भीषण कांड हो गया और मैं चुप बैठा रहा, मैंने विरोध नही किया । युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेरे तन ने कौरवों का साथ दिया पर मेरा मन सदा पाण्डवों के साथ था। यदि ऐसा न होता, यदि युद्ध होने के पूर्व ही मैंने दुर्योधन के अत्याचारों का घोर विरोध किया होता तथा राजद्रोह कर दिया होता तो सम्भव है महाभारत होने की नौबत न आती और जो देश की इतनी धन-जन की हानि हुई है वह न हुई होती।

फिर युधिष्ठिर कहते हैं कि अपने को दोषी समझूँ या न समझूँ, और युद्ध के पूर्व मैंने यदि विरोध किया भी होता तो भी युद्ध रुक नहीं सकता था । कारण

है - सर्वत्र फैली हुई ईर्ष्या, छल, कपट, द्वेष, षड्यन्त्र, स्वार्थपरता और पाखण्ड। सर्वत्र अशान्ति है, सर्वत्र संघर्ष है । कहीं शान्ति नहीं है । प्रत्येक राजा अपने राज्य की सीमा का विस्तार करना चाहता है, कर रहा है । धर्म का नाम लेकर युद्ध का समर्थन किया जाता है । किसी व्यक्ति का साधारण स्थिति में बवध कर डालना पाप समझा जाता है पर युद्ध-भूमि में मनुष्यों का सामूहिक बध पाप नहीं समझ जाता । युद्ध में मरने वालों को वीरगति प्राप्त होती है ऐसा कहा जाता है।

कवि को उस द्वापर-युग की सामाजिक परिस्थितियों में तथा वर्तमान - कालीन परिस्थितियों में बहुत कुछ समानता दिखायी देती है । अतः कवि ने उन परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन किया है । छठे सर्ग में, इस प्रकार से मूल कथानक से कवि कुछ हट गया है, बहक गया है । वह द्वापर युग से बलिदान में आ पहुँचता है । वह आज के वैज्ञानिक युग के उन विभिन्न आविष्कारों की ओर संकेत करता हैं जो युद्ध के रूप को भीषणंतम कर सकते हैं । मानव बुद्धिवादी प्राणी हैं । इसी बुद्धि की सहायता से उसने प्रकृति के ऊपर बहुत कुछ विजय पा ली है, बहुत कुछ अधिकार कर लिया है ।

प्रकृति के रहस्यों को उसने समझ लिया है । पर तो भी उसे शान्ति नहीं है। उसके जीवन में अब भी अशान्ति है, यद्यपि अब वह अनन्त शक्तिशाली हो गया है। पर विज्ञान के साथ जब तक आध्यत्मिकता का गठबं - धन नहीं होगा, सच्ची शान्ति, पूर्ण शान्ति मानव की नसीब नहीं होगी। आविष्कार तो मनुष्य कर रहा है, पर आविष्कार का वास्तविक उद्देश्य क्या है और क्या होना चाहिए - यह वह नहीं जानता । वह आविष्कार आविष्कार के लिए करता है । वह सशक्त हो गया है, पर उसमें पशुबल की ही प्रधानता आयी है । शक्ति के साथ धर्म-ज्ञान का होना भी आवश्यक है अन्यथा शक्ति प्रताड़ना का, दूसरों का कष्ट देने के कारण भी बन सकती है ।

आज के मनुष्य को प्रेम, बलिदान तथा सात्विक भावनाओं की आवश्यकता है । मनुष्य को मनुष्य होना है, तभी विश्व में शान्ति संभव होगी।

अन्यथा लाख ग्रह-नक्षत्रों तक के रहस्यों को समझ जाय, आकाश के ऊपर अपना थोड़ा-बहुत अधिकार पा ले, ज्ञानार्जन कर ले, पर उसमें पूर्णता न होगी। आज के युग का प्राणी तो दूसरे प्राणी के मुख का कौर छीन कर खा लेने को सोचता है, आत्मबलिदान की बात नहीं । अतः कवि ने मानव-मात्र को सचेत किया है कि यदि हम मानव-एकता, शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना चाहते हैं तो प्रयोगों को ध्वंसात्मक नहीं, निर्माणार्थक कार्यों की ओर उन्मुख होना पड़ेगा । तभी मानव-संस्कृति की रक्षा संभव होगी ।

विश्व में दिन तथा रात की भाँति पाप और पुण्य दोनों एक साथ रहे हैं और रहेंगे । उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन तथा हार-जीत तो संसार में चलती ही रहती है । पाप से, अवनति से, पतन से, हार से घबराना क्यों। दुख से तथा असफलता से घिर जाने पर निराशा क्यों? अवांछनीय वस्तुओं एवं परिस्थितियों को सदा हटाने का प्रयत्न करो । निरन्तर प्रयत्नशील रहो, कर्त्तव्यपरायण रहो, कर्मनिष्ठ हो, पाप, अवनति, पतन, दुःख, हार आदि तो सब दूर हट ही जायँगे। तुम्हारे अन्दर कर्मनिष्ठा स्फूर्ति और उत्साह भर देगी । भीष्म जी युधिष्ठिर से ऐसा ही करने को कहते हैं । वे यह भी कहते हैं कि जो पाप नहीं करता वह महापुरुष है । पर जो पाप करते हैं, जो पाप के पंक में फँस चुके हैं, जो व्यक्ति ऐसों को उबारता है, उनका उद्धार करता है, उन्हें सन्मार्ग पर लाता है, उनकी शुभ्रता की ओर मार्ग प्रदर्शन करता है वह भी महापुरुष है ।

तुम गिरे हुओं को उठाओ । जिन्हें आज का मार्ग नहीं सूझ रहा है उन्हें मार्ग दिखाओं जो रो रहे हैं उनके आँसू पोंछो । जो व्यथित हैं उनकी व्यथा पर मरहम लगाओं तुम्हारी आवश्यक्ता जनता के बीच में है, सन्यासी बन कर निर्जन वन में नहीं । संसार में परिवर्तन तो होते ही रहते हैं। महाभारत ने भी एक परिवर्तन उपस्थित किया है। यह सोचना ठीक नहीं है कि मानव जाति का महाभारत के कारण अन्त हो जायागा। विश्व बहुत बड़ा हैं। सृष्टि की परम्परा ऐसे युद्धों से समाप्त नहीं होती। हाँ, युग-परिवर्तन अवश्य हो जायगा। द्वापर का अन्त होगा और कलियुग आयेगा। नया युग अब आ रहा है। नये सुख का, नये

ज्ञान का, नई संस्कृति का श्रीगणेश होगा। ध्वंस पर ही नव-निर्मण की नींव होती हैं। आशा आस्तिकता है और निराशा नास्तिकता। आशा रक्खो! नवीन युग अवश्य उन्नति करेगा। मनुष्य को अपनी महानता का ज्ञान होगा। जो अब तक नहीं हो पाया था वह अब होगा। इस नवीन युग के निर्मण में तुम भी योग दो। मानव के कल्याण के मार्ग का शोध करो। तुम्हारे पूर्व भी सभी महापुरुषों ने यही किया है । ज्ञान का दीप लेकर आगे बढ़ो । सबके सामने समानता का आदर्श रक्खो। विश्व में शान्ति लेकर आगे बढ़ो। विश्व में शान्ति तभी संभव है जब सबको विकास के समान अवसर मिलें। सबके अधिकार अक्षुण्ण रहें। सभी को अपने अधिकारों को भोगने के अवसर मिलें। स्वाभाविक है कि सभी अपने-अपने सुख, उन्नति, सुविधा और अधिकार चाहते है, सभी उनके लिए प्रयत्न-रत हैं।

पर अधिकार सभी चाहते हैं। इसलिए सबके स्वार्थ भिन्न - भिन्न होंगे, अतः उनके मार्ग में संघर्ष की सम्भावना है और बाधाएँ भी उपस्थित होंगी। इसलिए सब अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्त्तव्यों के प्रति जाग्रत रहें, सतर्के रहें, सच्चे रहें। कर्त्तव्य और अधिकार साथ-साथ चलें तभी संघर्ष नही होगा। तुम अपने शासन-काल में ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न करो। लोग केवल 'स्व' को ही न समझें - सोचें, 'पर' को भी सोचें-समझें। दूसरों के साथ हमारा सहयोग हो, सद्भावनापूर्ण तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार हो, आचार-विचार हो। स्वार्थपरता, प्रतिस्पर्धा की भावना, केवल अपने लिए संचय करने की भावना आदि जनता में न रहे। शासक और शासित की विषम भावना न रह जाय। लोग प्रेम-पूर्वक, सद्भावना-पूर्वक, हेल-मेल से जीवन व्यतीत करें, एक-दूसरे के काम आवें, एक के दुःख दर्द को अपना दुःख दर्द समझें। तभी राज्य में सच्ची शान्ति होगी। और यह सब तुम्हें करना हैं।

तुम सन्यास लोगे तो उससे तुम्हारा व्यक्तिगत लाभ भले ही कुछ हो जाय पर इससे जनता का क्या भला होगा, क्या कल्याण होगा!! तुम तो व्यक्तिगत सुख के लिए, व्यक्तिगत शान्ति पाने के लिए, व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास

के लिए ही सन्यास लेना चाहते हो, अतः तुम्हारे सन्यास लेने का विचार अनुचित ही है, प्रलायनवादिता है, कायरता है। संसार में रहकर तुम संसार का हित-साधन करो, इससे तुम्हारा भी हित-साधना है। केवल अपने ही हित-साधन की बात सोचना क्या ! सन्यासी तो वन में मन के शत्रुओं के भय से भागता है। तुम संसार मे रहकार ही संयम से काम लो, अपने मन के शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ और मोह - को जीतो । दुःख-सुख की चिन्ता छोड़ो । जो इस समय तुम्हारा कर्तव्य है उसे निभाओं, उसे पूरा करो ।

09.4 पहला सर्ग

इस ग्रंथ में सात सर्ग हैं। ग्रंथ के प्रथम सर्ग में महाभारत-युद्ध के कारणों का निर्देश किया गया है। साथ ही इस भीषण युद्ध के दुष्परिणामों पर भी दृष्टि डाली गयी है। युद्ध-भूमि लाशों से पटी है। भयंकर नर-संहार हुआ हैं। असंख्य निकट-सम्बन्धी मारे गये हैं। यह सब देखकर युधिष्ठिर के हृदय में पश्चात्ताप होता है। उनका हृदय ग्लानि से भर जाता है। वे इस युद्ध का कारण स्वयं अपने को मानते हैं। वे अपने को धिक्कारते हैं। उनके हृदय में निर्वेद के भाव का जागृत होना स्वाभाविक था। स्वयं अपनी तथा युद्ध की भर्त्सना करते हुए वे सोचते हैं कि क्या हम पाँच पाण्डवों के व्यक्तिगत द्वेष तथा स्वार्थ का परिणाम यह युद्ध नहीं था ? अब उन्हें ऐश्वर्य और भोग में कोई आकर्षण नहीं प्रतीत होता है। युद्ध आवश्यक नहीं प्रतीत होता है। युद्ध के भयंकर परिणाम को सोचकर, वीरों के नाश, कलाकारों के अन्त तथा मृतकों के जीवित-सम्बन्धियों के करुण-क्रंदन और हाहाकार को देख-सुनकर वे इतने अधिक व्यथित हो जाते हैं कि युद्ध-भूमि में शर-शैया पर पड़े हुए **भीष्म पितामह** के पास जाने और अपनी शंका को कहने का निश्चय कर लेते हैं।

09.5 दूसरा सर्ग

दूसरे सर्ग में युधिष्ठिर भीष्म जी के पास युद्धि-भूमि में किये निश्चय के अनुसार जाते हैं। वह उनसे दुखित होकर पूछते हैं कि यह सत्य है कि संसार की

दृष्टि में विजय हमारी हुई है, किन्तु क्या यह सचमुच हमारी विजय है ? क्या यह मेरी पराजय नहीं है? यह सत्य है कि दुर्योधन मारा गया है और हम सब शोक का भार ढोने को रह गये हैं, किन्तु क्या यही बात दुर्योधन की विजय की सूचक नहीं है? मुझे लगता है कि दुर्योधन का मृत शरीर मुझसे कहता है कि विजय मेरी हुई है और तुम्हारी पराजय! हे पितामह! आप कृपा करके बतायें कि विजय का वास्तविक अधिकारी कौन है ? युद्ध होने के पूर्व मैने युद्ध के दुष्परिणामों के विषय में गम्भीरतापूर्वक नहीं सोचा था, मनन नहीं किया था, यदि मुझे युद्धों के भीषण परिणामों का ज्ञान होता तो मैं कदापि युद्ध न करता। मैं त्याग, तप और बलिदान का सहारा लेता । भले ही दुर्योधन ऐश्वर्य भोगता, कम से कम इतने नर-संहार का भागी तो मुझे न होना पड़ता । परन्तु अब तो जो होना था सो हो चुका। मैं पश्चात्ताप की अग्नि से झुलसा जा रहा हूँ।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हुए कहते हैं कि अवश्य ही युद्ध भयंकर वस्तु है, अनुचित वस्तु है, किन्तु युद्ध के बिना संसार का काम नहीं चल सकता। युद्ध की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। मानव-स्वभाव से हम द्वेष, ईर्ष्या, विद्रोह स्वार्थ, अनाचार, अत्याचार आदि दुर्गणों को दूर नहीं कर सकते। यदि संसार के सभी व्यक्ति सात्विकता को अपना लेते, आदर्शवादी हो जायँ, अपने सच्चे उत्तरदायित्व को समझ लें तब युद्ध अवश्य ही न होगा, उसकी आवश्यकता ही न पड़ेगी। किन्तु ऐसा कभी न होगा। एक का दुःख ही दूसरे का सुख होता है। दुखी और सुखी, न्यायी और अन्यायी, लूटनेवाले और लुटानेवाले का कभी न कभी संघर्ष अवश्य ही लोगा। हम चाहते हैं, कि शान्ति रहे, संघर्ष न हो। पर संसार की घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ हमें युद्ध करने को बाध्य कर देती हैं। हमें अनिच्छापूर्वक ही सही, युद्ध करना ही पड़ता है। अहिंसा त्याग तथा बलिदान सामर्थ्यवालों को शोभा देते हैं। महापुरुषों तथा साधुओं की वह शोभा हो सकते हैं। किन्तु हम यह न भूलें कि दुष्टों के साथ त्याग, तप तथा आलिंगन करना निस्सार है। वे तुम्हारे त्याग को तुम्हारी कायरता समझेंगे। काँटा, काँटे ही से निकलता है। अहिंसा और त्याग का ढोंग कायर करते हैं। यदि

कोई हमारे अधिकार छीनता हो और उस अविचारी दुष्ट से त्याग और तप से हम काम ले, तो यह हमारी मूर्खता होगी । उस समय तो हमें ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए। अतः दूसरे सर्ग में युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध की गयी है।

09.6 तीसरा सर्ग

तीसरे सर्ग में भीष्म जी ने ब्रताया है कि हमें शान्ति-स्थापना के लिये ही युद्ध करना पड़ता है। जब अन्यायी हमारे मुँह का कौर छीनने लगता है तब अशान्ति का जन्म होता ही है। जब कोई हमारा सर्वस्व छीन रहा है, हमारे सत्वों पर कुठाराघात कर रहा है, तब हमारा धर्म, हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम साहस और वीरता के साथ अपने सत्वों की रक्षा करें, अपने सर्वश्व को अविचारी के हाथों में चाहें जैसे हो न जाने दें। ऐसे समय यदि हम शान्ति और अहिंसा को दुहाई दें तो यह हमारी अपनी आत्मा के प्रति न्याय नहीं, अन्याय होगा। यह बात हमारी मूर्खता, कायरता, असमर्थता की द्योतक होगी। अपने स्वत्वों की प्राप्ति तथा रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही हमारा परम धर्म है। जब संसार में अन्याय न होगा वरन् न्याय का बोलबाला रहेगा, तभी सच्ची शान्ति सम्भव है। अतः यह जान कर कि शान्ति सदा न्याय पर ही स्थिर रहा सकती है, हमें अन्यायी का शमन-दमन करना, उसे उचित दण्ड देना, उससे प्रतिशोध की भावना रखना आवश्यक है। अतः यदि कुचले हुए, सताये हुए, व्यक्ति अत्याचारियों के ऊपर तलवार उठा लेते हैं तो वह निस्संदेह पुण्य-कार्य है, पाप नहीं। क्योंकि इसी के द्वारा, इसके अन्तर्गत वास्तविक शान्ति, सर्वसाधारण का सुख आदि निहित है। क्षमा और अहिंसा निर्बलों को, कायरों को, असहायों को शोभा नहीं देती । यह तो क्षमतावानों, सामर्थवानों की शोभा है। अतः शांति का वास्तविक स्वरूप तलवार के पीछे ही होता है। न्याय तभी सम्भव होगा, जब हमारे पीछे बल हो, जिससे आततायियों को सर उठाने का साहस ही न हो !

09.7 चौथा सर्ग

चौथे सर्ग में भीष्म ने आत्म-विश्लेषण किया है। वे अन्त में इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि यदि मैने समझदारी और व्यवहार-कुशलता से पहले काम लिया होता तो कदाचित इस युद्ध करने का सम्भवतः दुर्योधन को साहस न होता। कम से कम युद्ध इस समय स्थगित तो हो ही जाता। कुछ अंशों तक मैं भी दोषी हूँ।

वे कहते हैं कि एक बात निर्विवाद है कि शान्ति मनुष्य को - वास्तविक, मनुष्य को - अवश्य रोक सकती है, किन्तु एक दानव को नहीं। शान्ति का राक्षसों के आगे कोई बस नहीं चलता और संसार में, सत्पुरुषों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश संख्या मानव-रूपधारी दानवों की ही है। इन नीचों, स्वार्थियों, पापियों के कुकृत्यों के कारण ही युद्ध होते हैं। इसमें बाध्य होकर अनेक आदर्श पुरुषों को भी भाग लेना पड़ता है। युद्ध पाप का ही तो दुष्परिणाम है। युद्ध स्वयं एक पाप है। अतः अनेक व्यक्ति इस पाप के भागी बनते हैं। युद्ध तो होता ही है। पापियों, अनाचारियों तथा अत्याचारियों की अतिवृद्धि हो गई थी। श्रीकृष्ण द्वारा आयोजित तुम्हारे राजसूय-यज्ञ के कारण अनेक राजाओं के हृदय में ईर्ष्या का शूल चुभा और युद्ध की प्रवृत्तियों को बल मिला। शकुनि की द्यूत-क्रीड़ा, द्रौपदी तक का जुये में हारना, द्रौपदी का वस्त्रहरण आदि सब युद्ध की अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के साधन-मात्र थे। इसके अतिरिक्त द्रुपद तथा गुरु द्रोणाचार्य का पारस्परिक विरोध, अर्जुन का वध करने की कर्ण प्रतिज्ञा तथा पितृऋण से मुक्त होने के लिए शकुनि का कौरवों के विनाश का प्रयत्न तथा अन्य राजाओं का पारस्परिक विरोध भी इस महाभारत को प्रेरणा देने में समर्थ और सहायक हुए थे। साधारण मानवों के हृदय में स्वार्थ, ईर्ष्या व द्वेष आदि दुर्गुण रहते हैं। वह दूसरों की लाशों की नींव पर ही अपने स्वार्थ एवं सुखपूर्ति की इमारत को खड़ा करता है। परिणाम होता है युद्ध । महाभारत - युद्ध भी एक ऐसा ही युद्ध था।

मनुष्य की आँखें सो चुकने के बाद खुलती हैं। मेरी भी वैसी ही खुलीं। यदि युद्ध के पूर्व ही मैं दुर्योधन को उसके अत्याचार के विरोध में ललकारता, तो संभव है, आज यह दिन देखने का अवसर न आता।

09.8 पाँचवाँ सर्ग

पाँचवें सर्ग में युधिष्ठिर आत्म-निरीक्षण करते हैं। आत्म-विश्लेषण करते हुए युद्ध के पूर्व की समस्त घटनाओं तथा परिस्थितियों पर विचार करते हुए वे यह समझने का प्रयत्न करते हैं कि इस युद्ध का उत्तरदायित्व मुझ पर कहाँ तक है। युद्ध समाप्त हो चुका है। युद्ध - भूमि सैनिकों तथा सेनापतियों की लाशों से पटी है। युधिष्ठिर के राजतिलक की जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं। किन्तु उनके हृदय को इससे सुख नहीं है, शांति नहीं है। विधवाओं के क्रन्दन तथा मृतकों के सम्बंधियों के दारुण शोक से भारत की भूमि त्रस्त है। कला तथा कलाकार, विद्या तथा विद्वानों, राजनीतिज्ञों आदि का अपरिमित नाश हो चुका है। युधिष्ठिर सोचते है कि मैं सदा त्याग, तप, बलिदान, अहिंसा तथा शान्ति आदि की बातें किया करता था। किन्तु जब मेरी परीक्षा का समय आया तो दूसरों को दिये हुए अपने ही उपदेशों को मैं स्वयं भूल गया। अपने ऐश्वर्य, अपने स्वार्थ, अपने भोग के लिए मैं युद्ध में फाँद पड़ा। तो क्या मेरी दया, करुणा, अहिंसा धर्म आदि ढोंग मात्र थे ? या संसार में दया, धर्म, करुणा, अहिंसा आदि सचमुच ढोंग ही हैं! वे भीष्म जी से व्याकुल होकर पूछते हैं कि पितामह ! क्या इस भीषण विनाश का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर है? इस सत्यानाश का दायित्व मुझ पर है या दुर्योधन पर, आप कृपा करके बतलाइये।

09.9 छठवाँ सर्ग

छठे सर्ग में एक प्रकार से कथा का क्रम टूट-सा जाता है। कुरुक्षेत्र ग्रंथ से यदि यह सर्ग निकाल लिया भी जाय तो उसकी कथा में कोई बाधा नहीं पडेगी। इस सर्ग में कवि ने स्वतंत्रतापूर्वक वर्तमान युग के ज्वलन्त प्रश्नों पर

विचार किया है। इसमें आधुनिक युग की प्रवृतियों पर मनन किया गया है, उनका विश्लेषण हुआ है। इस सर्ग में कवि ने मानव-जीवन के सुख-सुमृद्धि-शांतिमय भविष्य का काल्पनिक चित्र खींचा है। कवि चाहता है कि मनुष्य में मनुष्यता की जागृति हो। यदि ऐसा हो जाय तो संघर्षों का, युद्धों का अंत स्वयं हो जायगा। यदि स्वार्थ, ईर्ष्या, विद्वेष, विद्रोह आदि न रहेंगे तो फिर न्याय का समाज होगा और सच्ची शान्ति पृथ्वी के अंचल में होगी। फिर शान्ति में कोई बाधा न पड़ेगी । यदि मनुष्य अपने पापों, दुर्गुणों व कुकृत्यों को छोड़ दे तो यही संसार स्वर्ग के तुल्य हो जायगा। तब सभी के समान सत्व होंगे, समान अधिकार होंगे। साम्यवाद का प्रचार होगा । कोई किसी के अधिकारों का अपहरण न करेगा। साम्य की भावना से पूर्ण होकर विश्व-सुख सर्वत्र दर्शन देगा। फिर शान्ति ही शान्ति रहेगी। भगवान वह दिन अवश्य लाये।

09.10 सातवाँ सर्ग

सातवें और अंतिम सर्ग में कवि बाताता है कि मानव में मनुष्यता का होना ही सबसे अधिक वांछनीय है। मनुष्यता का गुण ही मानव को देवता बनाता है और मनुष्यता का पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब मनुष्य को ज्ञान का प्रकाश मिले। अशिक्षित असभ्य तथा अज्ञानी में मनुष्यता कैसे सम्भव हो सकती है। मनुष्यता महान है। कवि भाग्य में विश्वास नहीं करता; अपने भाग्य का निर्माता यह स्वयं है। यह गलत धारणा है कि जन्म के पूर्व ही मनुष्य ब्रह्मा द्वारा अपना भाग्य लिखा लाता है और तदनुकूल ही उसके जीवन में घटनायें होती हैं। मनुष्य ने अपनी ही बुद्धि, क्षमता, प्रतिभा, साहस तथा भुजबल के सहारे सब कुछ प्राप्त किया है।

इसके बाद कवि ने दिखाया है कि मनुष्य - मनुष्य में भेद कैसे और क्यों उत्पन्न हुआ ? राजा कैसे बने? बात यह है कि मनुष्य के अन्दर जब असंतोष और अविश्वास की भावना ने जन्म पाया तो व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए न्याय और रक्षा करने के ढोंग पर राजाओं का सृजन हुआ । प्रजा और राजा दो विभिन्न सत्ताएँ हो गईं। इसने मानव की स्वतंत्र सत्ता का अन्त कर दिया है।

राजा की स्वतंत्रता या उच्छंखलता तभी संभव है जब प्रजा की स्वतंत्र-भावना का दमन किया जाय। यह हुआ भी भीष्म बताते हैं कि सन्यास लेकर संघर्षपूर्ण संसार से भागना, अशान्त संसार का परित्याग करके व्यक्तिगत मोक्ष या शान्ति का चाहना, पलायनवादी प्रवृति है, कायरता है। तुम्हारा कर्तव्य है कि इन सन्यास-सम्बन्धी अशोभन विचारों को त्याग दो । सन्यासी भी स्वार्थी होता है, उसे भी कर्म करना ही पड़ता है। तुम अपना आदर्श संसार के सम्मुख रखो। इससे विश्व में शान्ति होगी और प्रजा तुम्हारे आदर्शों का अनुकरण करेगी। आज भारत में हाहाकार है। अन्न-वस्त्र तथा कलाओं के लिए विश्व तुम्हारी ओर टकटकी लगा कर देख रहा है। सन्यास लेकर क्या तुम उसकी आशाओं पर पानी फेर दोगे? केवल दो ही बातें संभव हो सकती हैं, या तो समस्त प्रजा को तुम सन्यासी बना दो, नगर उजड़ जायँ, जंगल सन्यासियों से बस जायँ, या फिर तुम स्वयं विश्व के कल्याण में लग जाओ, जुट पड़ो। संसार में रहकर ही तुम इसका कल्याण कर सकते हो, इससे भागकर नहीं। वास्तविक त्याग, तप और बलिदान तो यह होगा। सन्यासी होकर तो तुम स्वार्थपरता का परिचय दोगे क्योंकि व्यक्तिगत शान्ति ही तुम पा सकोगे। भगवान जो कुछ कर्तव्य तुम्हारे सामने रखें, जो भी तुम्हारा कार्य हो, उसी को सच्चाई और जिम्मेदारी से करो। यही समदर्शी होना है। विश्व को तुमसे ही अब आशा है। तुम इस पीड़ित मानवता का उद्धार कर सकते हो, घायल संसार के घावों को भर सकते हो। व्यर्थ की ग्लानि मत करो। उठो, कर्तव्य-मार्ग, कर्म-पथ पर अग्रसर हो जाओ। इसी में तुम्हारा तथा विश्व दोनों का कल्याण निहित है।

09.11 बोध - प्रश्न

१ 'महाभारत के युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर को क्या महसूस होता है।' इसकी समीक्षा कीजिए।

२ अंत में युधिष्ठिर युद्ध को पाप क्यों समझते हैं। आलोचना कीजिए।

३ पितामह भीष्म की दृष्टि से '**युद्ध क्यों होता है।**' विवेचन कीजिए।

४ युद्ध के परिणाम अगर युधिष्ठिर पहले ही सोचा पाते तो वे क्या करते ?

NOTES

BLOCK - 03

Unit 10

कुरुक्षेत्र की प्रेरणा और ऐतिहासिकता

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 कुरुक्षेत्र की प्रेरणा

10.3 कुरुक्षेत्र में इतिहास

10.4 कुरुक्षेत्र में कल्पना

10.5 महाकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र

10.6 खण्डकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र

10.7 बोध प्रश्न

10.0 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप कुरुक्षेत्र का इतिहास जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद इसमें कल्पना का समावेश जानेंगे।
- महाकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र का अध्ययन कर सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद कुरुक्षेत्र के खंडकाव्यत्व के बारे में जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इकाई ०९ में आपने कविवर दिनकर की जीवनी, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा कुरुक्षेत्र की कथा का अध्ययन किया। इसके अलावा आप सात सर्गो की कथा भी अब जान गए है।

अब ईकाई १० में आप कुरुक्षेत्र महाकाव्य है या नहीं इस का अध्ययन करने जा रहे है। इस इकाई में आप कविवर दिनकर ने कुरुक्षेत्र में **इतिहास और** कल्पना का समावेश कैसे किया है इस का अध्ययन करने जा रहे है।

कुरुक्षेत्र के अध्ययन के समय में रचनाकार की अपनी समझ, अपने समाज से जुडाव और मौलिकना के बारे में भी विश्लेषण करेंगे।

10.2 कुरुक्षेत्र की प्रेरणा

इस समय विश्व के समक्ष कुछ ऐसे ज्वलन्त प्रश्न हैं जिन पर मनन करने को तथा वर्तमान युग की समस्याओं को हल करने को, उन पेचीदा समस्याओं का समाधान करने को प्रत्येक समझदार व्यक्ति बाध्य है। इन युग - प्रभावित - भावनाओं से हमारा कवि दिनकर भी प्रभावित हुआ है। अपनी इन भावनाओं के स्पष्टीकरण के लिए तथा उन्हें प्रकाश में लाने के लिए उसने भीष्म और युधिष्ठिर का सहारा लिया। कुरुक्षेत्र की प्रबन्धात्मकता के लिए ही उसने लेखनी नहीं उठाई है। उसने तो इस प्रबन्ध-काव्य की आड़ में वर्तमान युग को क्रान्ति का संदेश दिया है। शोषित तथा शोषकों, शासित तथा शाषकों की वास्तविक स्थिति को उसने समझाते हुए हमें संघर्ष करने, अपने सत्वों तथा अधिकार की प्राप्ति तथा रक्षा के लिए प्रोत्साहन दिया है चुनौती दी है। युद्ध की अनिवार्यता तथा आधुनिक युग में अहिंसा तथा तप की निस्सारता पर उसने प्रकाश डाला है। उसने बताया है कि युद्ध की कला से हमें परिचित होने की आवश्यकता है, क्योंकि इसी के द्वारा हमारे लिए अधिकार प्राप्त करना सम्भव है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि तलवार के बल पर ही मानवता की रक्षा सम्भव है। मानवता की समस्या का हल केवल युद्ध ही है। अहिंसा त्याग और तप तो केवल क्षमतावानों की ही शोभा हो सकते हैं। अहिंसा का अस्त्र केवल साधु और कायर ही ग्रहण करते हैं। अपनी इन मान्यताओं को सिद्ध करने के लिए उसने भीष्म और युधिष्ठिर के वार्तालाप का माध्यम लिया है। यही कुरुक्षेत्र की आधार भूमि है।

कवि ने स्वयं अपनी भूमिका में इन सब बातों को स्पष्ट कर दिया है -

कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्धेश्य था। मुझे जो कुछ कहना

था। वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था। किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबन्ध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन कर रह गई होती ।"

" कवि ने अपने उद्देश्य को स्वयं ही लिख दिया है। उसे प्रबन्ध - काव्य लिखना था यद्यपि वह स्वीकार करता है कि " तो भी यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना न थी।

" वर्तमान युग के कुछ ज्वलन्त प्रश्न उसके मस्तिष्क में थे । 'कुरुक्षेत्र' ग्रन्थ की आधार-भूमि वे ही रहे हैं। कवि ने लिखा है, "बात यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और 'कलिंग-विजय' नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो, युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो । "

ऊपर की बात पर कवि की आस्था थी। वह वर्तमान युग के लिए अहिंसा और तप को व्यर्थ समझता था। उसने लिखा है "इसी क्रम में द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर को देखा, जो ' **विजय** ' इस छोटे-से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे। किन्तु यहाँ भीष्म के धर्म कथन में प्रश्न का दूसरा पक्ष भी विद्यमान था। आत्मा का संग्राम आत्मा से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। यह कथा युद्धान्त की ही है। युद्ध के आरम्भ में स्वयं भगवान ने अर्जुन से जो कुछ कहा था, उसका सारांश भी अन्याय के विरोध में तपस्या के प्रदर्शन का निवारण ही था। "

यद्यपि वह समझाता है कि "युद्ध एक निन्दित और क्रूर कर्म है पर साथ ही वह सोचता है, "किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर, जो अनीतियों के जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर, जो जाल को छिन्न - भिन्न कर देने के लिए आतुर है? पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शान्ति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी ; तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शान्ति को भंग नहीं करना चाहिए था ? " और वह अपना उत्तर भीष्म के मुँह से देता है ' **हाँ** ' ।

उन बातों का वर्णन करना, जो हमारे वर्तमान युग के अनुकूल हों, कवि का उद्देश्य था और यही उसकी आधार-भूमि थी। उसने लिखा है - भीष्म और युधिष्ठिर का आलम्बन लेकर मैने इस पागल कर देने वाले प्रश्न को प्रायः उसी प्रकार उपस्थित किया है जैसा कि मै उसे समझ सका हूँ । इसलिए में जरा भी दावा नहीं करता कि 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म और युधिष्ठिर ठीक - ठीक महाभारत के ही युधिष्ठिर और भीष्म हैं। यद्यपि, मैंने सर्वत्र ही इस बात का ध्यान रक्खा है कि भीष्म अथवा युधिष्ठिर के मुँह से कोई ऐसी बता नहीं निकल जाय जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो । हाँ, इतनी स्वतन्त्रता जरूर ली गई है कि जहाँ भीष्म किसी ऐसी बात का वर्णन कर रहा हो जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हो, उसका वर्णन नए और विशद रूप से कर दिया जाय। कहीं-कहीं इस अनुमान पर भी काम लिया गया है कि उसी प्रश्न से मिलते-जुलते किसी अन्य प्रश्न पर भीष्म पितामह का उत्तर क्या हो सकता था। "

' **कुरुक्षेत्र** ' ग्रन्थ के अन्तर के विषय में भी कवि ने कहा है कि -

> **" कुरुक्षेत्र के प्रबन्ध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक में मैं, प्रायः सोचता ही रहा हूँ । भीष्म के सामने पहुँचकर कविता जैसे भूल सी गई हो । फिर भी, कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अंततः, एक साधारण मनुष्य का शोकाकुल हृदय ही है जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है।"**

"कवि के शब्दों में "ये ही कुछ मोटी बातें हैं। जिन पर सोचते - सोचते यह काव्य पूरा हो गया।

10.3 कुरुक्षेत्र में इतिहास

प्रस्तुत ग्रंथ एक इतिहास - ग्रंथ नहीं है वरन् एक काव्य-ग्रंथ है। काव्य-ग्रंथ होने के नाते इसमें कल्पना का पूरा होना अनिवार्य भी है, आवश्यक भी, उपयोगी भी तथा स्वाभाविक भी। पर इस काव्य-ग्रंथ के कथानक का आधार महाभारत-ग्रंथ का एक अंश है अतः इसमे ऐतिहासिकता भी है। महाभारत-

ग्रंथ के जिस अंश को कवि ने अपने ग्रन्थ का आधार बनाया है, उसमें आये पात्रों तथा घटनाओं को कवि ने उसी रूप में हमारे समक्ष रखा है जैसा कि महाभारत मैं हैं।

महाभारत एक विस्तृत ग्रन्थ है । कुरुक्षेत्र का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है। महाभारत हो चुका है । युद्ध भूमि तथा श्मशान भूमि लाशों से पटी है। विजयोल्लास नगर में मनाया जा रहा है। किन्तु इस सर्वनाशी संहार के बाद युधिष्ठिर के मन में जो आत्मग्लानि और वेदना-व्यथा फूटती है और वह अपने को दोषी समझते हैं तथा संन्यास लेने की बात सोचते है, उसके लिए समाधान प्राप्त करने के हेतु वे भीष्म पितामह के पास जाते हैं जो युद्धभूमि में शरशय्या पर पड़े हैं। युधिष्ठिर अपनी मनोव्यथा का चित्र भीष्म के सामने प्रस्तुत करते हैं और भीष्म उन्हें निर्दोष बताते हुए महाभारत के कारणों को बताते हैं तथा उन्हें सन्यास के विचार को परित्याग कर शासन करने की सलाह देकर उनकी शंका का समाधान करते हैं। महाभारत की कथा का प्रयोग केवल इतने कथानक के अंश तक कुरुक्षेत्र में किया गया हैं ।

कुरुक्षेत्र के युद्ध की विभीषिका तथा भयंकर संहार और धन-जन की हानि को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर का मन विचलित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बड़े-बड़े निर्स्पृह लोग भी ऐसे भयानक दृश्यों को देखकर मर्माहत हो जाते हैं। युधिष्ठिर सोचते हैं कि इस क्षण-भंगुर मानव जीवन तथा नाशवान संसार के वैभव-विलास तथा श्री के लिए ही यह महाभारत-युद्ध ठाना गया था। अतः यह विजय दूषित और कलंकित है; वास्तव में यह आध्यात्मिक पराजय है। इससे तो अच्छा था युद्ध नहीं ही होता, मैं संन्यास ले लेता । पर खैर, जो कुछ मेरे कारण हुआ है उसका प्रायश्चित्त यही है कि मैं सन्यास ले लूँ। मैं राज्य नहीं करूँगा। इतना रुधिर बहाने के पश्चात् जो वैभव और लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उसका भोग नहीं करूँगा। सन्यास लेने के अपने विचार को उन्होंने भीष्म से कहा तथा ऐसी स्थिति में राजा का धर्म तथा कर्तव्य क्या है, इस सम्बन्ध में उनके विचार जानने चाहे ।

राजा के कर्त्तव्यों तथा राजधर्म की विशेषताओं पर भीष्म जी ने प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि संसार के अन्दर रहकर भी योगी हुआ जा सकता है। एक गृहस्थ भी योगी का-सा आचरण कर सकता है। अपने तथा दूसरों के लिए पूर्ण जीवन जो बिताता है वह स्तुत्य है! तुम भी ऐसा ही करो। राजा का सबसे बड़ा धर्म है - प्रजारंजन। उसका शासन-कार्य प्रजा की प्रसन्नता बढ़ाने, उसकी सतत उन्नति करने के लिए होना चाहिए। राजा को न्याय-प्रिय, कर्त्तव्य-परायण, पुरुषार्थी, वीर, साहसी, धार्मिक तथा प्रजापालक होना चाहिए। उसे अपनी समस्त प्रजा को सन्तानवत् समझाना चाहिए और सबसे समानता का व्यवहार करना चाहिए। उसके राज्य में सबको समान अवसर आत्मोन्नत्ति मिलें। राजा को सत्य-प्रिय, गुणज्ञ तथा गुण-ग्राहक, जितेन्द्रिय, आत्मजित्, संयमी, सुशील, कोमल स्वभाव का विशाल-हृदय, उदार तथा धैर्यवान होना चाहिए।

राजा को साम, दाम, दण्ड, भेद सभी का प्रयोग अवसर के अनुकूल करना चाहिए। न्याय, दया, धर्म और उदारता का एक साथ उसके हृदय में निवास होना चाहिए। कर्त्तव्य-पालन के लिए राजा को अवसरानुकूल कोमलता तथा कठोरता दोनों को शासन-संचार में अपनाना चाहिए। सदा कोमलता से शासन करने से राज्य स्थायी और दृढ़ न रह सकता है और न सदा कठोरता से शासन करने से । अतः राजा को सूझ-बूझ तथा तुरत-बुद्धि से काम लेना चाहिए। समय की समस्याओं तथा परिस्थितियों को समझने तथा तदनुकूल कार्य करने की क्षमता राजा में जब होगी तभी उसका राज्य स्थायी रहेगा !

10.4 कुरुक्षेत्र में कल्पना

महाभारत के भीष्म तथा युधिष्ठिर सम्बन्धी उपर्युक्त कथानक को ही आधार मानकर कुरुक्षेत्र के कथानक का निर्माण हुआ है। परन्तु कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति का इस संक्षिप्त कथानक में प्रयोग किया है। अपनी कल्पना का पुट देकर कवि ने कुरुक्षेत्र के कथानक को चिन्तनप्रधान बना दिया है। ऐतिहासिक कथानकों को आधार मानकर जो ग्रंथ निर्मित किये जाते हैं, उनमे ऐतिहासिकता

की सर्वथा उपेक्षा तो नहीं की जाती, क्योंकि कवि तथा लेखकों पर भी कुछ नियन्त्रण होते हैं। उन्हें भी कुछ सीमाओं के अन्दर चलना पड़ता है । पर कवि या लेखक चूँकि इतिहास ग्रन्थ नहीं लिख रहा है अंतः उसे कुछ छूट, कुछ स्वतन्त्रता भी होती है। दिनकर जी ने ऐतिहासिकता का निर्वहण करते हुए भी अपनी कल्पना-शक्ति से कुरुक्षेत्र को एक भव्यता प्रदान की है । उसमें उन्होंने प्राचीनता में नवीनता तथा नवीनता में प्राचीनता का समन्वय किया है। छठा सर्ग तो पूरी कल्पना ही कल्पना का फल है। अतः महाभारत की मूलकथा को एक नविनता प्रदान की गई है। मूल-कथानक नवीनता से ओत-प्रोत होकर पाठकों के समक्ष आया है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है,

" कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था । "

कवि के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि उसे कुछ कहना था और वह उसने महाभारत के कुछ कथानक को आधार बनाकर कहा है। अतः ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय प्रमाणित है।

एक बात बीच में हम और समझ लेना चाहिए। महाभारत संस्कृत का विश्वविख्यात प्रबंन्ध-काव्य है जिसमें कौरवों तथा पाण्डवों के जीवन पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है । पर आधुनिक विद्वानों की ऐतिहासिकता ही संदिग्ध है। उनका कहना है कि महाभारत एक प्रबन्ध-काव्य है, ऐतिहासिकग्रंथ नहीं। अतः इसके पात्र तथा घटनायें अनैतिहासिक हैं, कम से कम अधिकांश की ऐतिहासिकता तो संदिग्ध है ही । पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि भीष्म, युधिष्ठिर, कृष्ण, कर्ण, दुर्योधन आदि प्रमुख पात्र ऐतिहासिक नहीं हैं, न प्रत्येक घटना। प्रमुख घटनायें ऐतिहासिक हो भी सकती हैं पर उनका विस्तार तथा अनेक घटनायें अनैतिहासिक हैं। महाभारत ग्रन्थ ऐतिहासिक है या नहीं, इस पर हमें विचार

नहीं करना है। हमें विचार इसी पर करना है कि महाभारत के जिस अंश को लेकर कवि ने अपने कथानक का निर्मण किया है उसमें कहाँ तक ऐतिहासिकता है तथा कहाँ तक कल्पना।

अब हमें देखना यह है कि महाभारत के मूल-कथानक से और कुरुक्षेत्र के कथानक में क्या अन्तर है, विभिन्नता है। महाभारत में युधिष्ठिर राज्याभिषेक के पश्चात् भीष्म के पास शंका-समाधान को गए थे, पर कुरुक्षेत्र में आत्मग्लानि से भर जाने पर पाप-पुण्य की विवेचना करते हुए एकाएक युधिष्ठिर भीष्म के पास पहुँचे थे ओर अपनी शंकाओं का समाधान चाहा था । दूसरा अन्तर यह है कि निवृत्तपरायणता के भावों के उदय होने पर युधिष्ठिर अपने चारो भाइयों तथा कृष्ण के साथ उनके पास उपदेश लेने गए थे, जबकि कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर अकेले ही उनके पास गए हैं। महाभारत के युधिष्ठिर अधिक विनम्र तथा भीरु थे, किंतु कुरुक्षेत्र के युधिष्ठिर अधिक निर्भीक दिखाए गए हैं। महाभारत में युधिष्ठिर ने बहुत विस्तार के साथ अपनी मनोव्यथा तथा विचारों को व्यक्त किया है। यहाँ युधिष्ठिर अधिक वाचाल दिखाए गए हैं। अतः ऐतिहासिकता की दृष्टि से मूल रूप में कथानक नहीं आया है । हाँ, इस परिवर्तन से एक बात यह अवश्य हुई है कि कथानक में अधिक मनोवैज्ञानिकता तथा स्वभाविकता आ गई है।

कुरुक्षेत्र का तो पूरा प्रथम सर्ग ही एक बात में समाप्त हुआ है। युद्ध की विभीषिका और भयंकर नर-संहार को देखकर युधिष्ठिर में आत्मग्लानि का उदय होता है। युद्ध की भीषणता-सम्बन्धी उनके विचार इस सर्ग में वर्णित हैं। पाप-पुण्य की विवेचना तथा युद्ध-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार है। दूसरे सर्ग के कुछ अंशों में भी युधिष्ठिर अपने मानसिक विचारों तथा मनोभावनाओं को कहते हैं। इस सर्ग के प्रारम्भ में भीष्म के शौर्य, पराक्रम, साहस, बलविक्रम, निर्भीकता, तेज, सहिष्णुता तथा उनकी वर्तमान दशा का वर्णन है। फिर युधिष्ठिर का उनके सामने होना दिखाया जाता है और तब वे भीष्म से युद्ध की विभीषिका और सर्वनाश, देश के अपार धन-जन की हानि तथा उसके फलस्वरूप

अपनी आत्मग्लानि और आत्म-व्यथा का वर्णन करते हैं। वे अपने को इस युद्ध का कारण तथा दोषी कहते हैं तथा अपने संन्यास लेने की बात की ओर भी संकेत किया है। तीसरे, चौथे तथा पाँचवें सर्गों में भीष्म पितामह ने जो उपदेश युधिष्ठिर को दिए हैं या उनके विचारों का खंडन किया है तथा तत्सम्बन्धी बातें कहीं हैं उनका वर्णन है।

कुरुक्षेत्र के कथानक में युद्ध की समस्या पर विचार करते हुए कवि ने यह सदा ध्यान रखा है कि भीष्म तथा युधिष्ठिर के मुँह से कोई ऐसी बात न निकलने पावे जो द्वापर युग के लिये अस्वाभाविक लगे । इस बात को कवि ने अपनी भूमिका में स्वयं कहा है। पर भूमिका में उन्होंने यह भी कहा है। "इतनी स्वतंत्रता जरूर ली गई है कि जहाँ भीष्म कोई ऐसी बात का वर्णन कर रहे हों, जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती है, उसका वर्णन नए और विशद रूप में कर दिया जाय । कहीं - कहीं इस अनुमान पर भी काम कर लिया गया है कि उसी प्रश्न से मिलते-जुलते किसी अन्य प्रश्न पर भीष्म पितामह का उत्तर क्या हो सकता था ।"

अतः उनके कथन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए भी उन्हें जहाँ कहीं भी अपनी कल्पना को स्थान देने का अवसर मिला है उससे उन्होने सदा लाभ उठाया है। जब कवि का उपर्युक्त दृष्टिकोण रहा है तब कथानक में परिवर्तन करने के पर्याप्त अवसरों का मिलना और कवि का उनसे लाभ उठाना स्वाभाविक है। कुरुक्षेत्र में हमें अपने युग की समस्याओं पर भी प्रकाश पड़ते दिखाई देता है। अपने युग के जीवन के विशद चित्र हमें इसी कारण स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं। छठे सर्ग में तो विशेष रूप से कवि की यह सफलता है, प्रतिभा है, क्षमता है और सूझ-बूझ है कि वह अपने काव्य में भले ही उसका कथानक किसी युग का हो, अवसर मिलने पर युग-जीवन का चित्रण कर सके। इससे मनोवैज्ञानिकता तथा स्वाभाविकता में वृद्धि होती है।

भीष्म ने जो उपदेश युधिष्ठर को दिए थे जितने वे उस समय उपयोगी थे, उतने ही आज भी हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि कवि में उन ऐतिहासिक

स्थलों को चुनने की योग्यता और क्षमता थी जो उस समय की युद्ध और शान्ति की समस्याओं के हल थे और आज भी हैं। दिनकर जी ने इतिहास तथा कल्पना का समन्वय कुरुक्षेत्र में किया है और यह इस प्रकार किया है जिससे सर्वकालीन तथा वर्तमान कालीन समस्याओं का समाधान सम्मुख आता है तथा सर्वकालीन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

युद्ध का भय, युद्ध की विभीषिका, युद्ध के फलस्वरूप भारी धन-जन की हानि, स्वार्थ, संघर्ष, अन्याय, अत्याचार, अनाचार, शोषण, दमन, प्रताड़न, ईर्ष्या, द्वेष आदि का बोलबाला सदा रहा है। ये भयंकर बातों का न किसी एक युग-विशेष से सम्बन्ध है न किसी स्थान-विशेष से। ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन्होने उस समय के भी चिंतकों को परेशान किया था और आज के भी चिंतकों के लिए वे सर-दर्द हैं।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुरुक्षेत्र में ऐतिहासिक याने महाभारत-कालीन वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया गया है - युधिष्ठिर तथा भीष्म के वार्तालाप तथा तत्कालीन घटनाओं द्वारा, जहाँ कवि को अवसर मिला है वहाँ उसने लाभ उठाया है और अपनी कल्पना के समन्वय से वर्तमान कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला है और संदेश दिया है। आज के युग की वैज्ञानिकता तथा बढ़ी हुई बौद्धिकता को हानिप्रद बताते हुए कवि ने भावुकता की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उसने युधिष्ठर के हृदय की ग्लानि, व्यथा, त्याग, संयम तथा अहिंसात्मक भावनाओं का चित्रण करने के साथ ही साथ वर्तमान युग की अशान्ति, संघर्ष, असंतोष आदि का भी चित्रण किया है। और इस प्रकार इतिहास तथा कल्पना का समन्वय स्थापित किया है।

10.5 महाकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र

यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह ग्रंथ प्रबन्ध-काव्य है। इस सम्बन्ध में दिनकर जी ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है - "कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था।

मुझे ज़ो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बनकर रह गई होती । तो भी यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी। '

यह एक प्रबंध-काव्य है और महाकाव्य में प्रबंध-काव्य की ही शर्त है, खंड-काव्य की नहीं। इसके अतिरिक्त महाकाव्य की कथा को पौराणिक या प्रसिद्ध ऐतहासिक होना आवश्यक है। इस ग्रंथ का कथानक महाभारत ग्रंथ से लिया गया है। महाभारत का युद्ध ऐतिहासिक भी है तथा लोक-प्रसिद्ध भी। महाकाव्य की यह शर्त भी पूरी हो जाती है। किन्तु कथानक-न शुद्ध ऐतिहासिक है, न शुद्ध काल्पनिक । इसे हम मिश्रित कह सकते हैं। महाकाव्य में छन्दों की विविधता भी वांछनीय है। इस दृष्टिकोण से भी कुरुक्षेत्र पूर्ण है। यह गुण भी इसमें प्रचुर मात्रा में है। महाकाव्य में यात्रा-वर्णन, युद्ध-वर्णन तथा प्रकृति - चित्रण का होना भी आवश्यक है। कुरुक्षेत्र में उदाहरण-स्वरूप भले ही प्रकृति-चित्रण मिलता हो, किंन्तु वह आभास मात्र है। महाकाव्य में अपेक्षित सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निन्दा, सत्य एवं आदर्श की विजय और असत्य की पराजय आदि भी हमें कुरुक्षेत्र में मिलती है। किंतु यह सब होते हुए भी हम कुरुक्षेत्र को एक महाकाव्य नहीं कह सकते या एक सफल महाकाव्य नहीं कह सकते। महाकाव्य में कुछ विशेषताओं का होना प्राचीन काव्य-ग्रंथों के अनुसार अनिवार्य है, जैसे ग्रंथ के आरंभ में मंगलाचरण का होना तथा वस्तु-निर्देश का रहना। मंगलाचरण कुरुक्षेत्र में नहीं है। प्रारम्भ में वस्तु-निर्देश का होना भी महाकाव्य में आवश्यक है। उसकी भी स्पष्ट रूपरेखा हमें इस ग्रंथ में नहीं मिलती । महाकाव्य में नौ रसों का होना आवश्यक है - एक दो रस का प्रधान रूप से विशेषतः - श्रृंगार, वीर, शान्त रसों में से । इसमें नौ रस नहीं हैं। वीर रस की प्रधानता है तथा अन्य रस नहीं हैं, या तो उनका आभास-मात्र है या वे गौण रूप में हैं। हाँ, शान्त रस का पुट सर्वत्र है। पर आदि से अंत तक एक ही रस की धारा अबाधित रूप में नहीं रह सकी है। ग्रंथ के आरम्भ में युधिष्ठिर

के हृदय के निर्वेद का चित्रण है किन्तु पाँचवें सर्ग में उत्साह, जो वीर रस का स्थायी भाव है, उसका चित्रण है। सातवें सर्ग में इसी उत्साह-भाव को अपनाने का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रसविकास की दृष्टि से यह स्थिति, यह अवस्था अनुचित तो नहीं कहला सकती, पर बहुत उपयुक्त भी नहीं है।

कुरुक्षेत्र में युद्ध और शान्ति की चर्चा प्रारम्भ से अंत तक होती है और इन्ही सीमित समस्याओं का बार-बार विविध उदाहरणों द्वारा समाधान किया गया है। अर्थात् कुछ सीमित प्रकार की भावनाओं को बार-बार उठाया गया है, भिन्न-भिन्न शब्दों और रूपों में।

महाकाव्य में जीवन की बहुरूपता और उसके जटिल स्वरूपों के चित्रों का होना आवश्यक है। पूर्ण जीवन के जहाँ गुत्थीदार रूप होंगे, वहाँ घटनाओं की अधिकता, विविधता, उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात, संघर्ष आदि मिलेंगे। इस तत्व का भी कुरुक्षेत्र में अभाव है। महाकाव्य में प्रबंध-काव्य की भाँति कुतूहलता की भी आवश्यकता है। महाभारत की कथा सर्व-प्रसिद्ध है तथा गीता के विषय में हिंदू जानते ही हैं, अतः कुतूहल का होना स्वाभाविक ही है। मनोरंजकता का भी बीच-बीच में होना आवश्यक है। केवल एक स्थल में सौम्य हास्य की झलक-मात्र कुरुक्षेत्र में मिलती है यथा -

"त्रिविध ताप में लगो वहाँ भी जलने यदि पुरवासी,
तो फिर भागे उठा कमण्डलु, वन से भी संन्यासी ।"

कुरुक्षेत्र एक विचार-प्रधान-ग्रंथ है। अतः इसमें मनोरंजकता का ढूँढना ही अस्वाभाविक होगा ।

संक्षेप में हम देख सकते हैं कि यदि प्राचीन ग्रंथों के बताये नियमों की कसौटी पर हम कुरुक्षेत्र को कसते हैं तो वह एक महाकाव्य नहीं है - हाँ, उसमें महाकाव्य के अनेक गुण हैं। किन्तु यदि रूढ़िवादिता की उपेक्षा करके हम कुरुक्षेत्र को देखते हैं तो हम उसे महाकाव्य भी कह सकते हैं - हाँ, अवश्य ही वह एक सफल महाकाव्य नहीं है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के सभी गुणों का सम्मिश्रण नहीं पाया जाता ।

कविता हृदय की रागात्मक वृत्तियों का छंदोबद्ध वाणी में प्रकटीकरण है। यह छंदोबद्ध वाणी हमारे समक्ष दो रूपों में आती है, प्रबन्ध-काव्य के रूप या मुक्तक-काव्य के रूप में । प्रबंध-काव्य के कथानक के विस्तार तथा घटनाओं की संख्या आदि के आधार पर महाकाव्य तथा खण्ड-काव्य के दो भेद होते हैं। महाकाव्य में घटनाओं एवं वर्णनो की विविधता रहती है पर वैसी विविधता खण्डकाव्य में नहीं होती । खण्ड-काव्य का क्षेत्र उतना व्यापक नहीं होता जितना महाकाव्य का । जीवन के विविध अंगों की एवं संसार की जो विस्तृत व्याख्या हमें महाकाव्य में मिलती है, वह खण्डकाव्य में नहीं मिलती। खण्डकाव्य का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक संकुचित, संकीर्ण और परिमित होता है। महाकाव्य की विविध घटनाओं में से एक घटना का विस्तारपूर्वक जहाँ दिग्दर्शन हो, वहाँ खण्ड-काव्य होता है। खण्डकाव्य का कथानक संक्षिप्त तथा परिमित होता है। उसमें महाकाव्य का सा विस्तार तथा वैचित्र्य का न दिखाई पड़ना स्वाभाविक ही है। वर्णनों, सर्गों, छंदों, अलंकारों आदि की विविधता महाकाव्य में होती है। वहाँ खण्डकाव्य का कथानक संक्षिप्त होता है। उसमें महाकाव्य का सा वैचित्र्य और वैविध्य नहीं होता ।

महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग का छंद अपने पहले वाले सर्ग से भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग के अंत में आगे के सर्ग में प्रयुक्त होने वाले सर्ग के छंद का प्रयोग होता हैं ।

10.6 खण्डकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र

महाकाव्य के जो लक्षण बताए गए हैं वे खण्डकाव्य में भी पाए जाते हैं - किन्तु खण्डकाव्य में उनका प्रयोग सीमित रूप में होता है महाकाव्य के लिए निर्धारित समस्त विशेषताएँ खण्डकाव्य में पाई जायँ यह आवश्यक नहीं है। खण्डकाव्य को कथानक के लिए सर्गों की आवश्यकता है। खण्ड-काव्य सर्गबद्ध हो भी सकता है और नहीं भी। सण्डकाव्य में एक ही छंद का प्रयोग होना चाहिए । महाकाव्य तथा खण्डकाव्य में नायक, कथानक तथा रस के

सम्बंध में समानता हो सकती है। किन्तु पात्रों की संख्या खण्डकाव्य में अपेक्षाकृत कम होगी तथा प्रासंगिक कथायें भी कम होंगी। यात्रा - वर्णन, शिकार, युद्ध-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि के लिए खण्ड-काव्य में अपेक्षाकृत कम स्थान रहता है और यह भी आवश्यक नहीं है कि इनमें से सभी का वर्णन खण्डकाव्य में हो।

महाकाव्य और खण्डकाव्य में कथानक की कथा में एकसूत्रता रहती है, केवल मुक्तक काव्य में ही इसकी आवश्यकता नहीं है। मुक्तक का पूर्ण भाव उसमें रहता है। वह अपने में पूर्ण होता है - भाव की दृष्टि से । मुक्तक के छंद अपने आगे - पीछे के छंदों से असम्बद्ध होते हैं, स्वतन्त्र होते हैं। मुक्तक में एक ही घटना अथवा भावना को स्थान प्राप्त होता है और उसी की उसमें पूर्णता होती है। किन्तु महाकाव्य तथा खण्डकाव्य में अनेक भावनायें तथा घटनायें होती हैं।

एक उत्तम खण्डकाव्य की कुछ विशेषताएँ होती हैं। उस दृष्टि से हम कुरुक्षेत्र को एक सफल खण्डकाव्य भी कह सकते हैं। खण्डकाव्य की कुछ विशेषताओं को हम समझ लें। प्रथम तो उसकी कथा का सम्बन्ध किसी महापुरुष से होता है जिसका चरित्र-चित्रण काव्य में किया जाता है। यद्यपि उसमें जीवन की बहुरूपता और उसके स्वरूपों के चित्र हमें नहीं मिलते। यह तो महाकाव्य में ही संभव है और उपयुक्त भी। पूर्ण जीवन के जहाँ गुत्थीदार रूप होंगे, वहाँ घटनाओं की अधिकता, विविधता, उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात, संघर्ष आदि मिलेंगे। किन्तु खण्डकाव्य में जीवन की एक ही विशिष्ट झाँकी दिखाई जाती है।

दूसरी विशेषता खण्डकाव्य की यह है कि उसमें शांत, प्रेम, करुण, वीर आदि रसों की ही प्रधानता होती है, जो जीवन के सरल भावों का ही प्रदर्शन करते हैं। तीसरी बात होती है कुतूहल और उसके फलस्वरूप मनोरंजकता के सम्बन्ध में । प्रबन्ध-काव्य में कुतूहलता की अधिक आवश्यकता होती है पर खण्डकाव्य में यह चीज इतनी आवश्यक नहीं होती। चौथी बात है खण्डकाव्य

में उसकी सादगी, उसकी सरलता और सरसता। खण्डकाव्य की भाषा, शैली, छंद में सादगी हो। उसमें स्वाभाविकता, गंभीरता और प्रवाह अवश्य हो। और तभी वह सफल काव्य होगा। प्रबन्ध-काव्य में भाषा की जटिलता, अलंकारों की प्रचुरता, द्वन्द्वों तथा अन्तर्वद्न्द्वों की अधिकता भले ही वान्छनीय हो, पर खण्डकाव्य में नहीं । ये प्रायः सभी विशेषताएँ कुरुक्षेत्र में मिलती हैं। इसी से हम उसे सफल खण्डकाव्य भी कह सकते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि यह महाकाव्य भी है और खण्डकाव्य भी। अवश्य ही यह सफल महाकाव्य नहीं है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के सभी गुणों का सम्मिश्रण नहीं पाया जाता, जैसे पहले ही कहा गया है, पर अवश्य ही सफल खण्डकाव्य कहला सकता है।

कुरुक्षेत्र विशुद्ध खण्डकाव्य भी नहीं है वरन् इसे हम समस्या-मूलक खण्डकाव्य कह सकते हैं क्योंकि विभिन्न समस्यायें बार-बार उठाई गई हैं और बार-बार उनके ही समाधान का प्रयत्न जैसे इस काव्य का उद्देश्य दिखाई देता है।

इससे कई स्थानों पर विशुद्ध खण्डकाव्य की मान्यताओं की भी उपेक्षा हुई है।

अतः संक्षेप में हम कुरुक्षेत्र को प्राचीनता तथा नवीनता का समन्वय कराने वाला, प्राचीनता में नवीनता और नवीनता में प्राचीनता का पुट देने वाला समस्या-मूलक खण्डकाव्य कह सकते हैं।

10.7 बोध - प्रश्न

१ कुरुक्षेत्र लिखने की प्रेरणा दिनकरजी के कहाँ से मिली ?

२ सिद्ध कीजिए कि कुरुक्षेत्र में इतिहास और कल्पना का समावेश हुआ है।

३ महाकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र का विवेचन कीजिए।

४ खण्डकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र विवेचन कीजिए।

NOTES

BLOCK - 03

Unit 11

महाभारत के युद्ध के कारण

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 महाभारत के युद्ध के कारण

11.3 युद्ध की अनिवार्यता

11.4 युद्ध की भीषणता

11.5 यद्ध - स्वार्थी नेताओं के कारण

11.6 कुरुक्षेत्र में आधुनिक छाप और वर्तमान-कालीन समस्याएँ

11.7 बोध प्रश्न

11.0 उद्देश्य

- इस इकाई में आप महाभारत के युद्ध के कारण क्या है - युद्ध की अनिवार्यता - आदि के बारे में अध्ययन करेंगे।
- युद्ध के तदुपरांत युद्ध की भीषणता और परिणाम भी आप जान सकेंगे।
- युद्ध-स्वार्थी नेताओं के कारण ही है। इसका भी आप अध्ययन करेंगे।
- कवि दिनकर ने - वर्तमान - कालीन समस्याओं की तुलना - कुरुक्षेत्र के समय से तुलना की है इसका भी आप अध्ययन करेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इकाई १० में आपने कुरुक्षेत्र की प्रेरणा कुरुक्षेत्र में इतिहास और कल्पना का समावेश, महाकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र, ख़ण्डकाव्य की दृष्टि से कुरुक्षेत्र के बारे में सविस्तार रूप से अध्ययन किया।

अब इस इकाई ११ में आप महाभारत के युद्ध के कारण- युद्ध की अनिवार्यता और युद्ध के बाद के भीषण परिणाम आदि का अध्ययन करने जा

रहे है। इसके अलावा आपने वर्तमान कालीन समस्याएँ और कुरुक्षेत्र की समस्याओं की तुलना-किस प्रकार कविवर दिनकरजी ने की है - इसका भी अध्ययन करने जा रहे हैं।

11.2 महाभारत के युद्ध के कारण

महाभारत - युद्ध कौरवों और पाण्डवों के विद्वेष के कारण ही हुआ हो, ऐसा न था। सदा ही युद्ध के अनेक कारण होते हैं। महाभारत-युद्ध में भी ये ही समस्त कारण थे। कवि कहता है -

"सत्य ही तो, कोटि का वध पाँच के सुख के लिए ।
किन्तु मत समझो कि इस कुरुक्षेत्र में,
पाँच का सुख ही सदैव प्रधान था;
युद्ध में मारे हुओं के सामने,
पाँच के सुख-दुख नहीं उद्देश्य केवल मात्र थे ।"
"महाभारत नहीं था द्वन्द्व केवल दो घरों का,
अनल का पुंज था इसमें भरा अगणित नरों का।
न केवल यह कुफल कुरुवंश के संघर्ष का था,
विकट विस्फोट यह सम्पूर्ण भारतवर्ष का था ।

वर्षों पूर्व से ही यूद्ध की भूमि तैयार हो रही थी, ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा अनाचार, अन्याय, स्वार्थ, वध आदि का बोलबाला इस युद्ध के पूर्व था। उनके कुफल-स्वरूप युद्ध पूर्व तो होना ही था, सब किसी बहाने को ढूँढ़ रहे थे। कर्ण, अर्जुन को मारना चाहता था, द्रुपद, गुरु द्रोण को मारकर बदला चुकाना चाहता था, शकुनि अपने स्वार्थ-साधन के लिए युद्ध चाहता था, कृष्ण के सुधारों तथा दुष्टों के दमन से लोग कृष्ण से चिढ़े थे, हारे हुए राज भी बदला चुकाने की घात में थे। कवि आगे भीष्म पितामह से इस प्रकार कहलवाता है कि तुम्हारी उन्नति देखकर अनेक राजा तुम्हारे शत्रु मन ही मन प्रसन्न हो गये थे - वह सभी ही तो युद्ध चाहते थे -

"निभाना पार्थ-वध का चाहता राधेय था प्राण,
द्रुपद था चाहता गुरू द्रोण से निज वैर-शोधन ।
शकुनि को चाह थी, कैसे चुकाये ऋण पिता का,
मिलाये धूल में किस भाँति कुरु-कुल की पताका !
सुयोधन पर न उसका प्रेम था, वह घोर छल था।
हितू बनकर उसे रखना ज्वलित केवल अनल था ;
जहाँ भी आग थी जैसी, सुलगती जा रही थी,
समर में फूट पड़ने के लिए प्रकुला रही थी।
सुधारों से स्वयं भगवान् के जो-जो चिढ़े थे,
नृपति वे क्रुद्ध होकर एक दल में जा मिले थे।
नहीं शिशुपाल के वध से मिटा था मान उनका,
दुबक कर था रहा धुँ धुँआ द्विगुण अभिमान उसका !
परस्पर की कलह से वैर से होकर विभाजित ।
कभी से दो दलों में हो रहे थे लोग सज्जित ।

कृष्ण ने तो भारत की बिखरी हुई शक्तियों को एक-सूत्र में बाँधने के पवित्र उद्देश्य से तुम्हे चक्रवर्ती सम्राट् बनाने को राजसूय-यज्ञ किया था। पर हाय रे स्वार्थी मूर्ख राजाओं की बुद्धि -

"सो परिणाम और कुछ निकला, भड़की आग भुवन में ।
द्वेष अंकुरित हुआ पराजित राजाओं के मन में ।"

यह मानव-स्वभाव की कमजोरी है कि वह दूसरे की उन्नति नहीं सह सकता -

"इस पूजन (राजसूय) में पड़ी दिखाई उन्हें विवशता, अपनी
पर वे विभव प्रताप, समुन्नति में परवशता अपनी !
राजसूय का यज्ञ लगा उनको रण में कौशल-सा,
निज विस्तार चाहने वाले चतुर भूप के छल-सा।"

मानव-प्रकृति में अनेक कमजोरियाँ होती हैं और उन्हीं के कारण युद्ध अनिवार्य हो जाता है । उस समय भी यही सब कमजोरियाँ थीं -

"धर्मराज! कोई न चाहता अहंकार नित खोना ।
किसी अमर सत्ता के सम्मुख सनमन से नत होना ।"

परवश होकर या अपने को कमजोर पाकर राजा-गण तुम्हारे राजसूय में सम्मिलित तो अवश्य हुए, पर उन्हें तुमसे घृणा और द्वेष था -

"लगा उन्हें, सिर पर सबके दासत्व चढ़ा जाता है,
राजसूय में से कोई साम्राज्य बढ़ा आता है।"
किया यज्ञ ने मान विमर्दित अगणित भूपालों का,
अमित दिग्गजों का शूरों का, बल वैभववालों का ।"

तुम्हारे वनवास, छल के जुए तथा द्रौपदी के चीर-हरण से धर्मात्मा प्रजा तुम्हारे पक्ष में थीं। वह कौरवों का नाश करना चाहती थी। भीम को जहर देना, लाक्षागृह आदि घटनाओं ने युद्ध निश्चित कर ही दिया था। व्यास जी ने यज्ञ की समाप्ति पर ही लोगों को इस भय से सचेत कर दिया था। अन्याय, अत्याचार जोरों पर थे। द्रौपदी-अपमान से तो भीष्म तक रो पड़े थे -

'धिक-धिक मुझे हुई उत्पीड़ित सन्मुख राज-वधूटी,
आँखों के आगे प्रबला की, लाज खलों ने लूटी ।
और रहा जीवित मैं, धरती फटी न दिग्गज डोला,

उस समय तो - "पर दुर्योधन की दुरग्नि नंगी हो नाच रही थी; अपनी निर्लज्जता देश का पौरुष जाँच रही थी। नर की कीर्ति-ध्वजा उस दिन कट गई देश की जड़ से, नारी ने सुर को टेरा, जिस दिन निराश हो नर से।"

तुम्हारे वनवास के पश्चात् कृष्ण के समझौता करने के जब सब प्रयास असफल हुए तब युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध हुआ कुछ राजा इधर आये, कुछ उधर। अनेक तो अपना वैर-शोधन का अवसर पाकर आए, अनेक अपने को कमजोर पाकर तथा बाध्य होकर इस युद्ध में सम्मिलित हुए और सबसे बड़ा कारण इस युद्ध का वह रहा जो सदा से ही युद्ध का कारण रहता है। वह था मानव-प्रकृति की कुछ कमजोरियाँ !

11.3 युद्ध की अनिवार्यता

नेतागण अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज की रक्षा के नाम पर भोली जनता को अपने विषैले प्रचार से उभाड़ते हैं। युद्ध-भावना संक्रामक रोग की भाँति तेजी से जनता में फैलती है। एक को देखकर दूसरा उत्तेजित होता है। ऐसे उत्तेजनापूर्ण वातावरण में गम्भीरतापूर्वक मनन करने का अवसर ही नहीं आता है। लोग मरने-मारने को कटिबद्ध हो जाते हैं। -

युद्ध का उन्माद संक्रमशील है, एक चिनगारी कहीं जागी अगर उस समय -

"और तब रहता कहाँ अवकाश है, तत्व चिंतन का गंभीर विचार को ?
आग की लपटें चुनौती भेजतीं, प्राणमय नर में छिपे शार्दूल को। युद्ध की ललकार सुन प्रतिशोध से दीप्त हो अभिमान उठता बोल है; चाहता नस तोड़ कर बहना लहू, आ स्वयं तलवार जाती हाथ में। "

स्वार्थ, द्वेष, द्रोह, ईर्ष्या, अविचार तथा अत्याचार आदि, जब तक शोषक और शोषित समाज में रहेंगे, जब तक निर्बल बलवानों द्वारा सताये जायेंगे, संघर्ष आज नहीं, तो कल होगा ही -

युद्ध को तू निन्द्य कहते हो, मगर जब तक उठ रहीं हैं चिनगारियाँ भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है। "

फिर पशुओं की - दानवों की समाज में सदा से बहु-संख्या रही है। त्याग, तप, बलिदान, अहिंसा से वे कभी नहीं सुधरते। दमन ही उन्हें ठीक करने का साधन है -

"त्याग, तप, करुणा, क्षमासे भींगकर व्यक्ति का मन तो बली होता मगर। हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे, काम आता है बलिष्ठ शरीर ही ।"
"हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है । "
क्योंकि - "सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजता जग है

बल का दर्प चमकता उसके पीछे जब जगमग है।"

अतः युद्ध के बिना कार्य नहीं चलता -

" मगर, यह शान्ति-प्रियता रोकती केवल मनुज को,
नहीं वह रोक पाती है दुराचारी दनुज को !
दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी पहचानता है ?
विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।"

व्यक्ति और समुदाय के धर्मों में भेद होता है। समुदाय के कल्याण के लिए युद्ध करना ही पड़ता है। यह मत समझो -

"समर के अग्रणी दो ही, पराजित और जीता।
नहीं जलता निखिल संसार दो की आग से है
अवस्थित ज्यों न जग दो चार के भाग से है।"

पूँजीपति पोषक निर्बलों का शोषण करते रहते हैं। उपाय न देखकर, अपने को कमजोर पाकर निर्बल सहता है, पिसता है, पर उसके हृदय में रोष और विद्रोह भरा ही होता है। चींटी भी अधिक दबाने से काटती है । अवसर मिलने पर यही त्रस्त और सताई जनता पीड़ा देनेवाले इन शोषकों, अत्याचारियों पर पिल पड़ती है। यदि मनोविज्ञान के आधार पर हम मानव-स्वभाव का अध्ययन करें तो युद्ध की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। शान्ति की स्थापना और अशान्ति को दूर करने के लिए युद्ध करना ही पड़ता है। महाभारत-युद्ध के भी यही कारण थे।

यह सत्य है कि युद्ध भीषण होते हैं। उनका दुष्परिणाम बड़ा संघातक होता है। कोई युद्ध नहीं चाहता पर तो भी युद्ध के बिना काम ही नहीं चलता -

"सहज ही चाहता कोई नहीं लड़ना किसी से
किसी को मारना अथवा स्वयं मरना किसी से ;
नहीं दुःशान्ति को भी तोड़ना नर चाहता है;
जहाँ तक हो सके, निज शान्ति-प्रेम निबाहता है।"

पर जब तक साम्यवाद का प्रचार न होगा, युद्ध बन्द न होंगे। एक को तो इतना

भी नहीं मिलता कि अपना पेट भर सके और एक के पास इतना अधिक है कि वह उसे पचा नहीं पाता, यह विषमता जब तक विश्व से दूर नहीं होगी, संघर्ष होगा ही। न्याय की स्थापना से ही शान्ति संभव है, तलवार के जोर से की हुई शान्ति कृत्रिम है, अस्थायी है। संचय की इस प्रवृत्ति ने युद्ध का बीजारोपण किया है।

11.4 युद्ध की भीषणता

युधिष्ठिर ने युद्ध की भयंकरता का चित्र खींचा है -

" बालहीना माता की पुकार कभी आती और, आता कभी आर्तनाद पितृहीन बाल का।

आँख पड़ती है जहाँ हाय, वहीं देखता हूँ सेंदुर पुछा हुआ सुहागिनीके भाल का।"

बाहर से भाग कक्ष में जो छिपता हूँ कभी,

तो भी सुनता हूँ अट्टहास, क्रूर काल का। "

इतना भीषण नर-संहार, इतने धन-जन की हानि, इतने लूले-लँगड़े, अपाहिजों तथा युद्ध-पीड़ितों की व्यथा, इतना युद्ध-जनित-आतंक जनता का हृदय हिला देता है।

विश्व अभी दो महायुद्धों को देख चुका था। निर्दोष शान्त अजा का हवाई हमलों से ध्वंस, आटम-बम को भीषणता, अपार धन-जन की हानि हम अभी भूले नहीं हैं।

11.5 युद्ध का दुष्परिणाम

युद्ध के बाद भी जनता के कष्टों का अंत नहीं रहता। केवल विजित का ही नाश युद्ध में नहीं हो जाता, विजेताओं की भी दशा अर्द्ध - मृत - अर्द्ध - सी हो जाती है। यह बात इन दो युद्धों को देखकर हमें स्पष्ट हो गई है। न जाने कितने विद्वानों, कवियों, कलाकारों, शूरवीरों आदि का अंत हो ज़ाता है। विद्या, कला तथा अनेक अमूल्य निधियों का नाश इन युद्धों के फ़लस्वरूप

होता है। युधिष्ठिर ने युद्धों के दुष्परिणाम का चित्र खींचा है -

"सुख-शान्ति गई, रस-राग गया, करुणा, दुख-दैन्य अशेष बचा है । विजयी के लिए यह भाग्य के हाथ में, सार-समृद्धि का शेष बचा है। रण शान्त हुआ, पर हाय, अभी भी, धरा अवसन्न, डरी हुई है; नर-नारियों के सुख - देश में नाश की, छाया सी एक पड़ी हुई है; धरती, नभ दोनों विषण्ण, उदासी गंभीर दिशा में भरी हुई है; कुछ जान नहीं पड़ता, धरती यह, जीवित है कि मरी हुई है ।

11.6 स्वार्थी नेताओं के कारण

हमारे नेतागण हमारा पथ-प्रदर्शन भी कर सकते हैं, और हमें पथ-भ्रष्ट भी कर सकते हैं। अपवाद को छोड़ दीजीए । किन्तु सत्य तो यह है कि हमारे नेता-गण आज के दिन व्यक्तिगत स्वार्थ में ही फँसे हैं। हमारी लाशों पर वे अपना महल बनाना चाहते हैं। आज विश्व - शान्ति - शान्ति कहकर चिल्लाता है। और इसमें भी संदेह नहीं कि सर्वसाधारण जनता शान्ति ही चाहती है। युद्ध से उसे कोई भी लाभ नहीं होता । युद्ध - काल में तथा उसके अंत के पंजे में फँस कर नेतागण अपना उल्लू सीधा करते हैं। भोली जनता उनके कहने में आ जाती है। 'देश की शान्ति खतरे में है,' 'देश का सम्मान खतरे में है' यह प्रचार किया जाता है, जब कि देश की शान्ति और सम्मान किसी खतरे में नहीं होता। खतरे में होती है उन नीच एवं दुष्ट नेताओं की मनमानी इच्छायें, स्वार्थ, यशलिप्सा आदि। कवि ने कहा है -

" विश्व-मानव के हृदय निद्वेष में,
मूल हो सकता नहीं द्रोहाग्नि का ;
चाहता लड़ना नहीं समुदाय है,
फैलती लपटें विषैली व्यक्तियों की साँस से ।"

क्योंकि साधारण जनता युद्ध नहीं चाहती। यदि वास्तव में हमारे देश या समाज के प्रति अन्याय भी हो रहा हो तो क्या अन्य उपाय,युद्ध के अतिरिक्त नहीं हैं? युद्ध की भीषणता से प्रजा घबड़ाती है। उसका सोचना स्वाभाविक ही है -

"हर युद्ध के पहले द्विधा लड़ती उबलते क्रोध से,
हर युद्ध के पहले मनुज है सोचता, क्या शस्त्र ही -
उपचार एक अमोघ है
अन्याय का, विष का, गरलमय द्रोह का।"
किन्तु - स्वार्थ-लोलुप सभ्यता के अग्रणी,
नायकों के पेट में जठराग्नि-सी जो जला करती है। "
उसी का फल होता है युद्ध -
"प्रत्यय किसी बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का ;
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है,
जो आप तो लड़ता नहीं,
कटवा किशोरों को मगर,
आश्वस्त होकर सोचता,
शोणित बहा, लेकिन गई बच लाज सारे देश की। "
भोली जनता के अज्ञान का वह अनुचित लाभ उठाता है। वह उन्हें लूटता है, उनकी भावनाओं के साथ खेलता है।

दो-दो विश्वव्यापी युद्ध हो चुके हैं और ऊपर से 'शान्ति-शान्ति' चिल्लाते हुए भी कुछ राष्ट्र भीतर-भीतर तीसरे युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं। क्या यह दो महायुद्ध हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल आदि की मनोवृत्तियों के फलस्वरूप न थे ? व्यक्तिगत स्वार्थ और संकीर्ण दृष्टि केवल अपने देश की आर्थिक तथा व्यावसायिक समस्याओं के सुधार-प्रसार तथा हल के लिए, अन्य देशों पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व-महत्व स्थापित करने के लिए ही ये दो भीषण युद्ध वर्तमान युग ने देखे। कुछ थोड़े से राजनीतिज्ञों की इच्छा, शक्ति और मनोवृत्ति समस्त विश्व को युद्ध में घसीट लाई ।

प्रजा लड़ती है धोके में आकर । मित्र-राष्ट्रों ने युद्ध-काल में घोषित किया था कि वह प्रत्येक देश की स्वतंत्रता को कायम रखने को यह युद्ध कर रहे हैं। पर युद्ध के बाद, विजय के बाद भी यह विजेता अन्य देशों के भागों पर

बलपूर्वक अधिकार जमाये बैठे हैं तथा स्वतंत्रता चाहनेवाली जनता को कुचल रहे हैं। जिन लम्बे-चौड़े वायदों में फँसा कर भोली जनता से सहायता प्राप्त की गई थी, उनको कितनी शीघ्रता से विजेता भूल गए! पर असहाय प्रजा कर ही क्या सकती है। कवि ने उसकी मनोदशा का मार्मिक चित्र खींचा है -

"लड़ना उसे पड़ता मगर ।
और जीतने के बाद भी,
रणभूमि में वह देखता है सत्य को रोता हुआ।
वह सत्य जो है रो रहा इतिहास के अध्याय में ,
विजयी पुरुष के नाम पर कीचड़ नयन का डालता ।
उस सत्य के आघात से,
हैं झनझना उठती शिराएँ प्राण की असहाय सी।
सहसा विपंची पर लगे कोई अपरिचित हाथ ज्यों ।
वह तिलमिला उठता, मगर,
है जानता इस चोट का उत्तर न उसके पास है।"

इस ग्रंथ की कथा महाभारत पुराण से ली गई है। इस इतिहास की प्रसिद्ध घटना को लेकर, इस कथा की पृष्ठभूमि में हमारे समक्ष कवि ने कौशलपूर्वक हमारे '**वर्तमान**' को रख दिया है। हमारा युग बुद्धिवादी युग है। हम तर्क और उपयोगिता की कसौटी पर कसकर ही प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारण करते हैं। इस कसौटी पर कसने पर कुरुक्षेत्र एक सर्वोत्कृष्ट रचना प्रतीत होती है। हमारा कर्तव्य, हमारा धर्म, हमारा आदर्श, हमारे सिद्धान्त क्या होने चाहिएँ, इस वैज्ञानिक तथा प्रगति के युग में हमें कौन मार्ग आत्म-कल्याण तथा देश कल्याण के लिए अपनाना चाहिए। इसका दिग्दर्शन ग्रंथ का हर पृष्ठ कराता है। भूतकाल का जो आदर्श रहा है, वह आदर्श बहुत अंशों तक आज भी हमारे लिए माननीय है। भूतकाल के आदर्श में उपयोगी अंश को निचोड़ कर इस ग्रंथ ने हमारे समक्ष रखा है। वर्तमान युग के आदर्शों को कवि ने तर्क-पूर्ण व्याख्या या विश्लेषण किया है। यह ग्रंथ वर्तमान युग के विचारों का प्रतिनिधित्व करता

है। कवि ने हमें एक नया संदेश दिया है। उसने हमें झकझोर कर जगा दिया है। एक नवीन तथा युग के अनुकूल आदर्श को कवि ने हमारे सामने रखा है। ग्रंथ की उत्तेजनापूर्ण भाषा और भाव जैसे हम भूले हुओं को सब याद दिला देते हैं।

महाभारत का प्रत्यक्ष भयावह रूप हमारे समाने आ जाता है। ग्रंथ की यह चरम सफलता है। किन्तु उस महाभारत - युद्ध के चित्र में हमें अपना वर्तमान दिखाई देता है। पात्र ऐतिहासिक हैं पर उनके द्वारा हमारा वर्तमान युग मुखरित हुआ है। गांधीजी की अहिंसा कहाँ तक वर्तमान मनुष्य रूपी दानवों से भरे युग में लागू हो सकती है, इस पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है। हिंसा-अहिंसा, प्रवृत्ति-परायणता तथा निवृत्ति-परायणता, आत्म-बल तथा शारीरिक बल, बुद्धि तथा मन आदि का द्वन्द्व, उनकी विशेषताओं, उसकी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता पर कवि ने अपने विचार उपस्थित किये हैं। अधिकारों के लिए लड़ने की, साम्यवाद के प्रसार तथा समता के भावों की आवश्यकता उसने दिखाई है। उनका विश्वास है कि साम्यवाद ही वर्तमान युग की पीड़ा का अंत कर सकता है।

श्री उत्तमचंद जैन 'गोयल' ने लिखा है - ' महाभारत के युद्ध को इस साहित्यिक पृष्ठ-भूमि पर चिरस्मारक बनाकर कवि ने न केवल युग-क्रांति की भावनाओं को सहेजा है, प्रत्युत धर्म, तप, करुणा, क्षमा आदि की व्यर्थता सिद्ध कर अनिवार्य युद्ध की समस्या पर प्रकाश बिखेर दिया है। इसी में विश्व-शान्ति के प्रश्न का और उसके पवित्र उद्धेशों का भविष्य खिल रहा है। आधुनिक युग की ऐसी ही आवृत्तियों को लेकर उसने कुरुक्षेत्र में मानव - कल्याण का स्त्रोत खोल दिया। यदि युग मुक्ति चाहता है तो उसे आध्यात्मिक लड़ाई को भूल जाना होगा। इसीलिए राष्ट्रभाषा हिन्दी का कवि 'दिनकर' सशक्त स्वर लेकर स्वत्व प्राप्ति के लिए 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से एक ललकार सुनाने आया है। "

श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ के शब्दों में हम कह सकते हैं कि - 'प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध की अवधि तक हमारे देश में जो सांस्कृतिक प्रगति हुई है, उसका उत्कृष्ट भावात्मक चित्रण इसमें हुआ है। युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, काव्य और तर्क, अनुभूति और विवेक, बाहुबल और आत्मबल, प्रकृति और निवृत्ति, हृदय और मस्तिष्क की जो विवेचना इस काव्य में है, उसमें भारतीय संस्कृति और समाज दोनों का सुन्दर समन्वय है।"

11.7 कुरुक्षेत्र में आधुनिकता की छाप और वर्तमान-कालीन समस्याएँ

कवि अपने समय की परिस्थितियों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि से प्रभावित होता है और वह उनकी उपेक्षा अपने ग्रन्थ में नहीं कर सकता है।

कवि तथा लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है और इस प्रभाव को उसके ग्रन्थ में स्पष्ट न देखा जा सकता है। वह इनसे अछूता नहीं रह सकता। कवि को कुछ संदेश अपनी रचना में संसार को देना होता है और यह काव्योचित ढंग से देता है। दिनकर ने द्वापर-युगीन समसयाओं की तुलना वर्तमान-कालीन समस्याओं के साथ की है। कवि विश्व में शान्ति, समता और सद्भावना चाहता है। वह संस्कृति तथा सभ्यता का विकास चाहता है। आज संसार बहुत आगे बढ़ गया है, उसने पर्याप्त उन्नति कर ली है। आज विज्ञान ने असंभव को भी संभव कर दिया हैं। अब पहले की भाँति संसार शक्तिहीन और विवश नहीं रह गया है -

" पूर्व युग सा आज का जीवन नहीं लाचार
आ चुका है दूर द्वापर से बहुत संसार।
यह समय विज्ञान का सब भाँति पूर्ण, समर्थ,
खुल गए हैं गूढ़ संसृति के अप्रिय गुरु अर्थ।
चीरता तम को सँभाले बुद्धि की पतवार,
आ गया है ज्योति की नव भूमि में संसार।

आज की-दुनिया विचित्र नवीन,
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
हैं बँधे नर के करों में वारि, विद्युत भाप,
हुक्म पर चढ़ता-उतरता है पवन का ताप।
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर सरित, गिरि, सिन्धु एक समान।

जितना भौतिक ज्ञान आज मनुष्य को है, जितनी जानकारी आज उसे है, उतनी पहले कभी नहीं थी। पृथ्वी ही नहीं, ग्रह-नक्षत्रों के संबंध में भी वह जान गया है और जान रहा है। आज पृथ्वी उसके लिए बहुत छोटी रह गई हैं -

हो जहाँ पर बैठ नर कुछ पल स्वयं में लीन -
फूल सा एकान्त में उर खोलने के हेतु,
शाम को दिन की कमाई तौलने के हेतु,
विज्ञान की भौतिकता की बहुत उन्नति हो चुकी है, पर मनुष्य को शान्ति नहीं है, सुख नहीं है, संतोष नहीं है। हो भी कहाँ से!
कवि कहता है - " ले चुकी सुख-भाव समुचित से अधिक है देह,
देवता हैं माँगते मन के लिए लघु गेह। "
आज के वैज्ञानिक लोग यह नहीं जानते कि जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है, उद्देश्य क्या है, अर्थ क्या है? विज्ञान ने यदि सब कुछ दिया, पर आत्म-ज्ञान ही नहीं दिया तो फिर उससे लाभ ही क्या हुआ?
' बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय,
जा रहा तू किस दिशा की ओर को निरुपाय?
लक्ष्य क्या? उद्देश्य क्या? क्या अर्थ ?
यह नहीं यदि ज्ञात तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ
आज मनुष्य का कितना मानसिक पतन हुआ है, वह कितना नीचे गिर गया है-
'वासना की यामिनी जिसके तिमिर से हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार;

बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर कर्म से पशु नीच।"

विज्ञान के साथ जब तक आध्यात्मिकता का समन्वय नहीं होगा, विश्व की वास्तविक उन्नति और समृद्धि संभव नहीं है, विश्व में तब तक शान्ति और संतोष नहीं होगा। कवि का विश्वास है कि विज्ञान की ज्यों-ज्यों प्रगति होती जा रही है, मनुष्य का आधुनिक जीवन अधिक विषम होता जा रहा है, वह इस भौतिक ज्ञान से क्रूर, स्वार्थी, दंभी और भौतिकता का दास होता जा रहा है, संहार का संदेशवाहक बनता जा रहा है :-

" बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु,
कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
फूँकने लगते सभी हो मत्त, मृत्यु-विषाण।
यह मनुज ज्ञानी, श्रृगालों कुक्कुरों से हीन -
हो किया करता अनेकों-क्रूरकर्म नवीन।"

द्वापर युग का कथानक लेकर भी कवि अपने वर्तमान काल को नहीं भूला है। महाभारत- युद्ध के साथ ही साथ उसे गाँधीजी के सत्याग्रह - विधान के सम्बन्ध में कवि ने अपना निराशावादी दृष्टिकोण सामने रखा है। साथ ही वह विज्ञान को साध्य न मानकर साधन मानता है।

अहिंसा आन्दोलन की उसे सदा याद आई है। उनकी अहिंसा तथा क्रान्तिकारियों आदि की हिंसा की भी अप्रत्यक्ष रूप में वह बातें करता गया है। वह कामना करता है कि देश में सुशासन हो -

" नर है विकृत अतः नरपति चाहिए धर्म-ध्वज-धारी,
राजतंत्र है हेय, इसी से राजधर्म है भारी।"

साम्राज्यवादी शोषकों की दमन-नीति से आज की प्रजा त्रस्त है। विदेशियों की सत्ता मिटने पर ही देश की शान्ति, सुख, संतोष, समृद्धि संभव है -

" जब तक स्वार्थ-शैल मानव के मन का दूर न होगा,
तब तक नर-समाज से असिधर प्रहरी दूर न होगा।"

विदेशी हमारी चिन्ता क्यों करें, हमें तो स्वयं अपनी ही चिन्ता करनी चाहिए, अपनी आँखें खोलनी चाहिए, अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। सत्ताधारी तो बदलने से रहे, हमें तो देश को विप्लव-विद्रोह के द्वारा ही स्वतंत्र करना होगा। यह उनका पुण्य-कार्य होगा -

" पढ़कर भी संकेत सजग हों, किन्तु न सत्ताधारी,
दुर्गति और अनल में दें आहुतियाँ बारी-बारी
कभी नये शोषण से कभी उपेक्षा, कभी दमन से,
अपमानों से कभी-कभी शरबोधक व्यंग्य-वचन से ;
दबे हुए आवेग वहाँ यदि उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़, काल बन मानव अन्यायी पर टूटें ;
कहो, कौन दायी होगा उस दारुण जगदहन का
अहंकार या घृणा कौन दोषी होगा उस रण का ? "

द्वापर के महाभारत के उपरान्त देश की त्रस्त दशा के साथ वर्तमान काल की त्रस्त जनता की तुलना कवि ने की है। उसके ग्रंथ में भूत के साथ वर्तमान जुड़ा हुआ है और आधुनिकता की भी स्पष्ट छाप है। आज की परिस्थितियों से वह प्रभावित है। वर्तमान काल के देश तथा समाज के वातावरण का उसने चित्रण किया है। आज के वैज्ञानिक युग का उसने सजीव वर्णन किया है। उसने वर्तमान-कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला है। तथा आज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों से वह प्रभावित हुआ है। आधुनिकता की छाप उसके ग्रंथ में यों तो प्रायः सर्वत्र है पर छठा सर्ग तो वैज्ञानिक युग की विशेषताओं पर ही प्रकाश डालता है। देश को स्वतंत्रता दिलाने की इच्छा की ओर भी संकेत कवि ने किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि को अपने देश की वर्तमान दशा पर क्षोभ था और उसकी राष्ट्रीयता इसी बात में है कि वह देश को शोषण, दमन, अत्याचार, और अनाचार से मुक्त कराना चाहता था, देश को स्वतंत्र देखना चाहता था। वह चाहता था कि लोगों को उनके स्वत्व उनके अधिकार मिलें। पर साथ ही हम

यह भी देखेंगे कि कवि का राष्ट्र-प्रेम अपने ही समाज तथा देश तक लागू नहीं है, वह मानव-मात्र के लिए कल्याण कामना करता है। वह विश्व-मंगल, विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं को चाहता है। अतः हम कह सकते हैं कि दिनकर की राष्ट्रीयता में समस्त मानवों के कल्याण की बात कही गई है।

11.7 कुरुक्षेत्र - आलोचनात्मक विश्लेषण

' कुरुक्षेत्र ' एक विचार - प्रधान प्रबन्ध - काव्य है। भदन्त आनंद कौशल्यायन की सम्मति में '**कुरुक्षेत्र नये युग की नई गीता है।**' वर्तमान समय की उलझी हुई समस्याओं को हल करने का इसमें सफल प्रयास किया गया है। यह काव्य युग - प्रवर्तक है। वर्तमान - युग के अनेक ज्वलन्त प्रश्नों पर इस ग्रंथ मे प्रकाश डाला गया है। इस संक्रांति - काल में यह ग्रंथ हमारा मार्ग - प्रदर्शन सफलतापूर्वक कर सकता है। श्री सम्पूर्णनन्द जी ने सत्य ही कहा है कि, 'इस ढंग की हिन्दी में कोई दूसरी पुस्तक है कि नहीं, मै नहीं कह सकता।' यही नहीं, हम श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों मे कह सकते हैं - " साकेत और कामायनी के पश्चात् यह कुरुक्षेत्र हिन्दी की एक प्रतिनिधि रचना है। पुस्तक समाप्त करते ही तुरंत फिर पढ़ने की इच्छा होती है। "

युद्ध की अनिवार्यता तथा उसकी पुष्टि के लिए ही जैसे कुरुक्षेत्र ग्रंथ की रचना हुई हो !! क्रान्ति का संदेश सुनाने को ही जैसे यह ग्रंथ लिखा गया है। स्वाभाविक रीति से उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ ही मनुष्य को युद्ध के लिए बाध्य करती हैं। युद्ध-कला का ज्ञान, नवयुवकों के लिए आवश्यक है। क्योंकि तुम भले ही युद्ध को निन्द्य कह लो पर -

" जब तलक हैं। उठ रहीं चिनगारियाँ, भिन्न स्थार्थों के कुलिश-संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है। "

इस सम्बन्ध में पहले बहुत-कुछ कहा जा चुका है। अन्यायी, अनीति करने वाला, शोषक, शान्ति-नाशक तथा अविचारी ही युद्ध का उत्तरदायी है। कवि हमें विश्वास दिलाता है -

" पातकी न होता प्रबुद्ध दलितों का खड्ग,
पातकी बनाता उसे दर्शन की भ्रान्ति है ;
शोषण की ज्वाला के हेतु बनती जो शान्ति,
युद्ध है यथार्थ में व भीषण प्रशान्ति है ;
सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घोर, पौरुष की शान्ति है ;
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता की,
ऐसी श्रृंखला में धर्म - विप्लव है, क्रान्ति है। "

यह सत्य है कि अधिकांश लोग शान्ति चाहते हैं किन्तु दुर्भाग्य यह है कि वह स्वयं उत्तरदायित्वहीन होकर ऐसे कार्य करते हैं कि अशान्ति और संघर्ष हो। युद्ध केवल इसलिए होते हैं कि भविष्य में फिर कभी युद्ध न हो सकें । पर ऐसा न कभी हो पाया है और न कभी होगा ही। सैनिक बल से स्थायी शान्ति कभी स्थापित नहीं हो सकती, क्षणिक तथा कृत्रिम भले ही उपस्थित हो जाय।

" कृत्रिम शान्ति सशंक आप अपने ही से डरती है,
खड्ग छोड़ विश्वास किसी का कभी नहीं करती है।
और जिन्हे इस शान्ति - व्यवस्था से सुख-भोग सुलभ है,
उनके लिए शान्ति ही जीवन - सार, सिद्धि दुर्लभ है।
पर जिनकी अस्थियाँ, चबाकर, शोणित पीकर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह समझो कुछ उनके मन का। "

आज के गांधीवाद के युग में अहिंसा का नाम बहुत जोरों से लिया जा रहा है। अन्याय के प्रतिकार को तो गाँधीजी भी कहते थे। पर आज के युग के अधिकतर मनुष्य न तो आत्मिक बल रखते हैं और न शारीरिक बल ही; अतः मनोबल और शक्ति के अभाव में अहिंसा का नाम लेना कायरता छिपाने का बहाना मात्र है। यह या तो असहायों का अस्त्र है और या सामर्थ्यवानों की शोभा है -

"वृद्ध, विदलित और साधन हीन को,
है उचित अवलम्ब अपनी आह का ;
गिड़गिड़ाकर किन्तु माँगे भीख क्यों ;
वह पुरुष जिसकी भुजा में शक्ति हो ?"

या फिर - " क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो, उसको क्या जो दन्तहीन, विष रहित, विनीत, सरल हो।" क्योंकि -

"उसकी सहिष्णुता, क्षमा का है महत्व ही क्या,
करना ही आता नहीं जिसको प्रहार है ?
करुण, क्षमा को छोड़ और क्या उपाय उसे,
ले न सकता जो वैरियों से प्रतिकार है ?"

आज के युग की समस्याओं आध्यात्मिक उपकरणों से हल नहीं हो सकतीं। आज के युग में हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पापी और अन्यायी चैन कर रहे हैं। और पुण्यात्मा, आदर्शवादी, कर्तव्य-परायण, उत्तर-दायित्व निबाहनेवाले कष्ट भोग रहे हैं। सत्य, त्याग और अहिंसा आज के युग में पराजित हो रहे हैं। अब '**आदर्श**' के नाम पर हमें भुलावे में रखना व्यर्थ है। देश की परिस्थितियाँ हमें क्रान्ति के लिए बाध्य करती हैं। भीष्म के मुख से कवि चिल्ला पड़ता है -

" कायरों की बातकर मुझको जला मत, आज तक।
है रहा आदर्श मेरा वीरता बलिदान ही।"

गाँधी जी के इस अहिंसा - युद्ध में न जाने कितने बलिदान हो गए, कितनों ने कष्ट भोगा, पर हिंसावादि विदेशियों पर क्या प्रभाव पड़ा ? सन् १९४३ की क्रांति जनता की अहिंसा के प्रति चुनौती थी। कवि तन-बल को अधिक महत्व देता है। सभी मनुष्य गाँधी जी - से बलवान नहीं ।

कवि युद्ध को पुण्य'और पवित्र कर्तव्य समझता है, धर्म समझता है। मानवोचित अधिकार के लिए लड़ना, मरना-मारना, अपने स्वत्वों को छीनने वाले के हाथ काट डालना ही धर्म है।

" छीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है।

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो ।"

कवि हमें उत्तेजना देता है - " संयम छोड़ काल बन मानव, प्रत्यायी पर टूटें। " तभी सच्ची शान्ति संभव होगी !

यदि हमारे साथ अन्याय हो और हम मुर्दे-से चुपचाप बैठे रहें, भाग्य-भाग्य चिल्लाया करें तो यह मनुष्यता का घोर अपमान है। आत्मबल से मानव जीते जा सकते हैं, दानव नहीं। उनके लिए हमें प्रतिशोध की भावना की परम आवश्यकता होती है । यदि इसका अभाव है तो हम पर धिक्कार है। कवि हमें बताता है -

" जानता हूँ किंतु जीने के लिए, चाहिए अंगार जैसी वीरता; पाप हो सकता नही वह युद्ध है, जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर। "

इस प्रकार हम हेखते हैं कि कवि ने युद्ध की अनिवार्यता, अहिंसा की सफलता, मनोबल की गौणता, शारीरिक बल की महत्ता, युद्ध तथा प्रतिशोध की भावना की आवश्यकता तथा उचित अधिकार के लिए संघर्ष पर जोर दिया है। इस ग्रंथ में अनेक अन्य उपयोगी प्रसंगों पर प्रकाश डाला गया है, जिन पर लिखना आवश्यक है।

11.8 बोध - प्रश्न

१ महाभारत युद्ध के कारण तथा अनिवार्यता अपनी भाषा में लिखिए।

२ युद्ध का दुष्परिणाम पर अपने विचार कुरुक्षेत्र के आधार पर लिखिए।

३ युद्ध में स्वार्थी नेताओं का हाथ किस प्रकार से जनता के जीवन-मरण से होता है - इसका वर्णन कीजिए।

४ वर्तमान युग के कुछ ज्वलंत प्रश्नों पर कवि ने दृष्टि डाली है - इस कथन के समर्थन में अपने विचार प्रकट कीजिए।

NOTES

BLOCK - 03

Unit 12

कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताएँ

12.3 कुरुक्षेत्र और गाँधीवाद - वर्तमान युग

12.4 कुरुक्षेत्र की अन्यविशेषताएँ

12.5 कुरुक्षेत्र का संदेश

12.6 कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीयता तथा विश्व-प्रेम विश्व-कल्याण

12.7 कुरुक्षेत्र में मानवात तथा अहिंसा का प्रभाव

12.7 बोध प्रश्न

12.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताएँ जान सकेंगे।
- इससे आप कुरुक्षेत्र में गाँधीवाद भी जान सकेंगे।
- इसके अध्ययन से आप कुरुक्षेत्र का संदेश जान सकेंगे।
- इसके बाद आप इस अध्ययन के उपरांत कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीयता तथा विश्वप्रेम और विश्व-कल्याण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कुरुक्षेत्र में मानवीयता का अध्ययन भी आप करेंगे।
- कुरुक्षेत्र में अहिंसा का प्रभाव के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इकाई ११ में आपने महाभारत के युद्ध के कारण-युद्ध की अनिवार्यता तथा परिणाम और युद्ध की भीषणता का अध्ययन किया। इसके अलावा आपने स्वार्थी नेताओं के कारण ही युद्ध होता है - इसके बारे में जानकारी प्राप्त कर लीं। कुरुक्षेत्र पर आधुनिक छाप और वर्तमानकालीन समस्याओं के बारे में भी आपने जानकारी प्राप्त कर ली।

अब आप इकाई १२ में अन्य विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे तदुपरांत आपलोग कुरुक्षेत्र और गाँधीवाद के बारे में जानकारी प्राप्त करनेवाले है। कुरुक्षेत्र के माध्यम से दिनकरजी जनता को क्या संदेश देना-चाहते है। इससे भी आप परिचय प्राप्त करनेवाले है।

कुरुक्षेत्र के माध्यम से कवि ने भारत के हर एक व्यक्ति को राष्ट्रप्रेम और विश्व प्रेम तथा विश्व कल्याण के बारे में सविस्तार से व्यक्त किया है। इसकी जानकारी प्राप्त करनेवाले हैं। इस इकाई में आप मानवीयता और अहिंसा और उसका प्रभाव कुरुक्षेत्र पर किस प्रकार हुआ है इससे आप परिचित भी होंगे।

12.2 कुरुक्षेत्र में आधुनिक प्रभाव और अन्य विशेषताएँ

कवि पर आधुनिक युग का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा हैं। उसकी वाणी में समस्त भारत की वाणी बोल रही है। आज हमारे कृषकों और मजदूरों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। जमींदारों और महाजनों के बोझ से वे दबे थे। जमींदरी तथा ताल्लूकेदारी का तो अंत हो गया है, किन्तु किसान की दशा वैसी की वैसी ही है। आचार्य विनोबा भावे का **'भूदान-यज्ञ'** चल ही रहा है। कवि इसे भी नहीं भूला है। जमीन के उचित बँटवारे के लिए भी उसने आवाज उठाई है। उसने कहा है कि एक समय था जब हवा और पानी की भाँति भूमि भी लोगों को सुलभ थी। पर आज शोषकों तथा पूँजीपतियों का बोलबाला है। इस

पूँजीवाद के क्रमिक विकास पर उसने बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। राजा का जन्म कैसे हुआ, मनुष्य-मनुष्य में इतना अन्तर कैसे हुआ, राजा प्रजा का रक्षक होने के स्थान पर भक्षक कैसे बन बैठा आदि का, बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

वह राज्य - शासन की विधि से असंतुष्ट है अनेक कानूनों द्वारा राज्य ने हमारी वाणी और विचार पर भी नियंत्रण रख छोड़ा है। कवि ने इस पर स्पष्ट संकेत किये हैं। आदर्श राज्य-शासन कैसा होना चाहिए, यह भी उसने विस्तार से सातवें सर्ग में दिखाया है।

" प्रजा त्रस्त है। दो महायुद्ध हो चुके हैं और तीसरे की तैयारी है। बड़ी तेजी से बैज्ञानिक प्रगति हो रही है। विज्ञान की प्रगति को वह बुरा नहीं कहता पर यदि वैज्ञानिक ध्वंसकारी आविष्कारों को न करके निर्माणकारी आविष्कार करते तो कितना अच्छा होता, पर ऐसा नहीं है। इसीसे उसे विज्ञान पर श्रद्धा नहीं। आज के मनुष्य ने समस्त तत्वों के रहस्य को जान लिया है। वह उनसे सेवा और कार्य ले रहा है। रेडियो, वायरलेस, हवाई-जहाज, जलयान, विद्युत, राकेट आदि उसकी प्रगति के द्योतक हैं। पर दूसरी ओर संहारक और भयानक अस्त्र-शस्त्र भी बनते जा रहे हैं। आटम-बम, हाइड्रोजन बम, टारपीडो तथा अनेक मारक गैसें भी बनती जा रही हैं। इन सबका कितना भीषण परिणाम होगा। आज का मनुष्य -

"वह अभी पशु है; निरा पशु हिंस्र रक्त-पिपासु,
बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।
कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
फूँकने लगते सभी हो मत्त, मृत्यु-विषाण ।
यह मनुज ज्ञानी, श्रृगालों, कुक्कुरों से हीन -
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।"

आज का मनुष्य भौतिकता से इतना अधिक पूर्ण है कि वह आध्यात्मिकता को भूल गया है। वह ईश्वर को भूल गया है। मनुष्य-मनुष्य नहीं दानव हो गया है। सच्चा मनुष्य तो वह है जो -

"एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही।"

गांधी जी ऐसे ही युग- पुरुष हुए । पर उन्होंने अहिंसा का अस्त्र लिया । कवि कहता है कि अहिंसा है तो अच्छी, पर अभी मनुष्य इतना विकसित नहीं हुआ है कि वह उसके योग्य हो । कवि को अहिंसा पर विश्वास नहीं है। आज के कुचले जगत को वह क्रान्ति के लिए उभाड़ता है कवि रूस के साम्यवाद तथा रूस और फ्रांस की क्रांति से विशेष प्रभावित हुआ है। कवि ने भीष्म के मुख से कहा है -

" मैं भी हूँ सोचता जगत से कैसे उठे जिघाँसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा, प्रेम, अहिंसा।"
पर किया क्या जाय
" किन्तु हाय, आधे पथ तक ही पहुँच सका यह जग है,
अभी शान्ति का स्वप्न दूर-नभ में करता जगमग है।"

पर आज का मनुष्य तो मनुष्य ही नहीं है भले ही वह बुद्धिवादी हो -

" बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर कर्म से पशु नीच।"

वह इस भौतिक, वैज्ञानिक प्रगति से मनुष्य को सावधान करता है। यह मानवता का और स्वयं कला, विद्या तथा विज्ञान का भी अंत कर देगी। आज का मनुष्य निरुद्देश्य जीवन की भाग - दौड़ में लिप्त है। आज का आध्यात्मिक वर्ग पूछ रहा है कि -

" सिन्धु से प्राकाश तक सबको किये भयभीत,
सृष्टि को निज बुद्धि से करता हुआ परिमेय

चीरता परमाणु की सत्ता असीम अजेय,
बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय ।
जा रहा तू किस दिशा की ओर हो निरूपाय ?
लक्ष्य क्या ? उद्देश्य क्या ? क्या अर्थ ?
यह नहीं यदि ज्ञात तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ ?'

वह मनुष्य को मनुष्य होने का उपदेश देता है। न्याय, सत्य, आत्म-नियंत्रण तथा विश्व-बन्धुत्व के भाव से ही सच्ची तथा स्थायी शान्ति विश्व में संभव है। वह कहता है -

"शान्ति-बीन तब तक बजती है नहीं सुनिश्चित सुर में,
स्वर की शुद्ध प्रतिध्वनि जब तक उठे नहीं उर-उर में। "

और यह तभी संभव होगा जब साम्यवाद फैलेगा, सबको अपने विकास के समान साधन तथा अवसर प्राप्त होंगे-

" धर्मराज, यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी ।
है सबको अधिकार मृत्तिका पोषक-रस पीने का,
विविध प्रभावों से अशंक होकर जग में जीने का।
सबको मुक्त प्रकाश चाहिए, सबको मुक्त समीर,
बाधा-रहित विकास, मुक्त आशंकाओं से जीवन।"

सभी अपना चरम विकास चाहते हैं -

" जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा। "

आज के इस उलझे और बिगड़े युग में आदर्शवादी लोग 'आदर्श' की समस्यायें सुलझाने में असफल होंगे। आदर्श के साथ व्यावहारिकता का गठबंधन होना आज के युग की पुकार है। कहीं-कहीं आदर्शवाद भी घातक होता है। भीष्म ने कहा भी है -

"प्यार पण्डवों पर मन से, कौरव की सेवा तन से ;
सध पायेगा कौन काम इस बिखरी हुई लगन से ?
भावों तथा आदर्शों की विविधता तथा अनेकता का फल भी कभी-कभी बहुत बुरा होता है। भीष्म ने कहा है -
" कभी वीरता को उभार रोका अरण्य जाने से,
वंचित रखा विविध विधि मुझको इच्छित फल पाने से। "
आदर्शवादी सोचता है कि यदि एक मनुष्य डिग गया है, नीचता पर उभर आया है तो क्या मैं भी वैसा ही बन जाऊँ। युधिष्ठिर सोचा सकते थे -
"हठ पै दृढ़ देख सुयोधन को, मुझको व्रत से डिग जाना था क्या ?"
पर काँटा काँटे से ही निकलता है। वर्तमान समय को इसी सिद्धांत की आवश्यक्ता है।

12.2.1 कुरुक्षेत्र और गाँधीवाद - वर्तमान युग

इस गाँधी युग में अहिंसा, सत्य, त्याग, तप और सहिष्णुता का नाम बहुत सुनाई पड़ा है। गाँधीजी का तो आदर्श ही सत्य और अहिंसा था। भारत की स्वतंत्रता का युद्ध अहिंसात्मक ही रहा है। इस अहिंसा - युद्ध के फल - स्वरूप भारत को स्वतंत्रता मिली है या विश्व की परिस्थितियों ने विदेशियों को भारत छोड़ने को बाध्य किया, इस विवाद - ग्रस्त प्रश्न को उठाना व्यर्थ है। पर काँग्रेस का आदर्श अहिंसा ही रहा है। '**अहिंसा-युद्ध**' भारत को गौतम बुद्ध के बाद, गाँधीजी की देन है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर भी द्वितीय सर्ग में इसी भाषा में बोलते हैं -

" तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता;
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
जीत, नई नींव इतिहास की मैं धरता ;
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता ;
तो भी हाय, यह रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता। "

इस अहिंसा का कवि ने देश की परिस्थिति को देखते तथा नाड़ी को पहचानते हुए घोर विरोध किया है। जमींदारों तथा पूँजीपतियों के शोषण पर उसने रोष प्रकट किया है। जमीन के बटवारे पर उसने जोर दिया है। साम्यवाद की आवश्यकता पर उसने प्रकाश डाला है। वैज्ञानिकों को निर्मण - सूचक (Constructive) दिशा की ओर मुड़ने का उसने संदेश दिया है। आज के शासन की नीति पर उसने असंतोष प्रकट किया है। गाँधी जी के राम-राज्य के आधार पर उसने अपने आदर्श-समाज का चित्र खींचा है । उदाहरणार्थ (प्राचीन युग का आदर्श समाज) देखें -

"राजा प्रजा नहीं था कोई और नहीं शासन था,
धर्म - नीति का जन-जन के मन-मन पर अनुशासन था।
अब जो व्यक्ति-स्वत्व रक्षित है दण्ड-नीति के कर से,
स्वयं समादृत था वह पहले धर्म-निरत नर नर से।" आदि -

आज का मनुष्य ईश्वर और प्रकृति से कितना दूर है और कितना भौतिकता से पूर्ण है, उसमें आध्यात्मिक गुण कैसे आवें - यह आज का ज्वलंत प्रश्न है ?

"किन्तु, है बढ़ता गया, मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश,
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।"

आज जो परिश्रम करता है, उसे ही भूखा रहना पड़ता है। ऐसा न होना चाहिए। क्या उपाय किया जाय ? उत्तर है - साम्यवाद।

"शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो ।"
सुख-साम्य की अनिवार्यता परम वांछनीय है, अन्यथा -
'न्यायोचित सुख सुलभ नहीं, जब तक मानव-मानव को,
चैन कहाँ धरती पर तब तक, शान्ति कहाँ उस भव को ?"

और जब तक प्रत्येक को शान्ति नहीं होगी, विश्व का नव-निर्मण नहीं हो सकेगा। साम्यवादी आधार पर ही शांति की स्थापना संभव है। वह व्याकुल होकर पुकार उठता है -

" साम्य की यह रश्मि स्निग्ध, उदार
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान। "

तभी मानव-मात्र का कल्याण होगा, सच्ची शान्ति के दर्शन होंगे -

"ऐसी शांति राज्य करती है तन पर नहीं हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर श्रद्धा-भक्ति-प्रणय पर। "

12.3 कुरुक्षेत्र की अन्यविशेषताएँ

मानव को नवीन प्रेरणा - कवि ने इस ग्रंथ द्वारा हमें नवीन प्रेरणा देने का प्रयत्न किया है। पर हमें समयोपयोगी नवीन दृष्टिकोण को पाना होगा - तभी हमारा कल्याण संभव है। सप्तम सर्ग में रूढ़िवादिता के प्रति उसने आक्षेप किया है, चाहे वह हमारे साधारण जीवन में हो, चाहे राजनीति में; आध्यात्मिक भारत को अब व्यावहारिक होना पड़ेगा, क्योंकि -

' तप का परन्तु बस चलता नहीं सदैव,
पतित समूह की कुवृत्तियों के सामने। "

जो हो गया उसके लिए चिंता की आवश्यकता नहीं।

' गत ही अचेत हो गिरा है मृत्यु-गोद बीच,
निकट मनुष्य के अनागत रहा पुकार। "

पतितों, गिरे हुओं को नई प्रेरणा मिलती है -

" आशा है मनुष्य की मनुष्य में, ढूँ ढो उसे
धर्मराज, मानव का लोक छोड़ वन में;
आशा मनुजत्व की विजेता के विलाप में है,
आशा है मनुष्य की तुम्हारे अश्रु कण में। "

हमारे नेता आत्म-सुधार करें। उनके अनुगत स्वयं सुधर जायेंगे।

श्रम का महत्व - कवि श्रम का महत्व (dignity of labour) हमें बताता है - " ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में मनुज नहीं लाया है,
अपना सुख उसने अपने भुजबल से ही पाया है।" संसार उन्हीं का है, जो परिश्रमी हैं, कर्मण्य हैं -

" यह पयोधि सबका मुख करता विरत लवण कटुजल से,
देता सुधा उन्हें जो मथते इसे मन्दराचल से। "

यहाँ तो "यह अरण्य, झुरमुट जो काटे, अपनी राह बना ले।" यहाँ सबको अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करना पड़ता हैं।

भाग्यवाद पर अविश्वास - कवि भाग्यवाद पर विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार यह मूर्खों का ही विश्वास हो सकता है -

" ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा करते निरुद्यमी प्राणी,
धोते वीर कु-अंक भाल का बहा भ्रुवों से पानी। "

" भाग्यवाद आवरण पाप का और अस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का। "

कवि कहता है कि सबका भाग्य एक है और वह है **" परिश्रम " पूँजीवाद तथा शोषण का आधार ही यह भाग्यवाद है** -

"एक मनुज संचित करता है, अर्थ पाप के बल से,
और भोगता उसे दूसरा, भाग्यवाद के छल से।
नर-समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुज-बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथ्वी, विनीत नभ तल है। "

निराशों को आशा - पापी तथा धर्मात्मा, निराश तथा विवशसभी का भविष्य उनके हाथ में है। पश्चात्ताप और आँसू से मनुष्य अपने किये पिछले पाप धो सकता है। अन्याय करने वाले भी क्रान्ति का झंडा उठा कर अत्याचारियों का दमन कर सकते हैं। आशा रखो -

" श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नवविश्व का निर्माण।

एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास -
धर्मदीप्त, मनुष्य का उज्जवल नया इतिहास -
समर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।"
याद रक्खो - "सत्य नहीं पातक की ज्वाला में मनुष्य का जलना ।
सच है बल समेट कर उसका फिर आगे का चलना। "

मनुष्यत्व के पुनर्जीवन की भव्य आशा - जब तक मनुष्य के हृदय में पाप और अन्याय के प्रति घृणा होगी, तब तक उसमें फँसकर भी वह आगे बढ़ सकेगा। सच्चा पश्चात्ताप, कटु अनुभवों से शिक्षा लेने की प्रकृति, व्यथापूर्ण मार्मिक हृदय मनुष्य में होना चाहिए उसकी आशा अवश्य पूर्ण होगी-

" पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का, जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज-प्रकृति से बिदा सदा को दाहक द्वेष गरल हो।
बहे प्रेम की धार मनुज को वह अनवरता भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर बीज प्रेम का बोये । "

नव-विश्व के निर्माण की भावना - कवि का विश्वास है कि एक दिन अवश्य ही ऐसा आयेगा जब नये विश्व का निर्माण होगा, भले ही वह कितना ही दूर क्यों न हो। यदि न्याय, स्नेह, समता, परोपकार-वृत्ति को लोग अपना लें तो अवश्य ही नये विश्व का जन्म हो सकेगा -

श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित-न्याय पर नव-विश्व का निर्माण।"
यों तो - " है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर, नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।"

कारण स्पष्ट है कुछ महान व्यक्तियों ने जन्म लिया । उनका प्रभाव कुछ समय तक कुछ जनता पर रहा। पर मानव-स्वाभव की कमजोरियाँ मनुष्य को बार-बार धर दबाती हैं। आज का मँजा हुआ बर्तन कल फिर मैला हो जाता है।

काश हमारा हृदय-परिवर्तन हो सके। तब तो नव विश्व का निर्माण अवश्य और स्थायी होगा।

इसके लिए युधिष्ठिर को भीष्म का दिया हुआ प्रबोध हमारा आदर्श होना चाहिए ।

" हमारा आदर्श व्यक्तिगत उत्कर्ष या मोक्ष नहीं है। "

अपने लिए तो सभी जीते हैं। मनुष्य वह है जो 'तारता हुआ तरे,' जो दूसरे के लिए मरे। वह स्वार्थी है, भले ही वह साधु-वेषधारी हो यदि - "जग को छोड़ खोजता फिरता, अपनी एक अमरता। "

क्योंकि - " अकर्मण्य पण्डित हो जाता अमर नहीं रोने से,
आयु न होती क्षीण किसी की कर्म-भार ढोने से। "

भीष्म ने कहा है -

' निज को ही देखो न युधिष्ठिर । देखो निखिल भुवन को।
स्ववत् शान्ति-सुख की ईहा में, निरत व्यग्र जन-जन को। "

मनुष्य वह है जो -

" होता बिदा जगत से, जग को कुछ रमणीय बनाकर,
साथ हुआ था जहाँ, वहाँ से कुछ आगे पहुँचा कर। "

राजा का भी आदर्श व्यक्तिगत अधिकार - भोग नहीं, वरन् आजा का पुत्रवत् पालन है, उनके दुःख - सुख में शरीक होना है। और -

" यदि सन्यास शोध है इसका तो मत युक्ति छिपाओ,
सब हैं विकल, सभी को अपना मोक्ष-मंत्र सिखलाओ। "

युद्ध के परिणाम-स्वरूप युधिष्ठिर की आत्मग्लानि और भीष्म का सारगर्भित आँख खोलने वाला प्रबोध हमारे वर्तमान द्वंद्व-मय-युग के लिए एक संदेश है। यहाँ सभी -

" करें विलीन देह को मन में, नहीं देह में मन को।
मन का होगा आधिपत्य जिस दिन मनुष्य के तन पर,
होगा त्याग प्रतिष्ठित जिस दिन भोग-लिप्त जीवन पर। "
उसी दिन हमारा नव-जागरण होगा।

पलायनवादी प्रवृत्ति का घोर विरोध- कवि का विश्वास है कि अकर्मण्य संन्यासी से कर्मनिष्ठ संसारी कहीं श्रेण्ठ होता है । उसने सन्यास को अकर्मण्यों तथा कायरों का मार्ग कहा है । सन्यासियों को वह श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता, मानव-जीवन और संसार व्यर्थ, और निस्सार नहीं है। कवि व्यंग्य करता है -

" कलुष निहित मानों, सच ही हो जन्म-लाभ लेने में। "

तथा - "मानों निखिल सृष्टि यह कोई आकस्मिक घटना हो,
जन्म-साथ उद्देश्य मनुज का मानों, नहीं सना हो। "

और फिर - " धर्मराज, क्या दोष हमारा, धरती यदि नश्वर है,
भेजा गया यहाँ पर आया स्वयं न कोई नर है। "

ग्रंथ की अन्य बातें - हमें यहाँ ठोस वास्तविकता का सामना करना चाहिए । विरक्त ब्रह्मचारियों को शुष्कता तथा स्नेह की अलौकिक शक्ति पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। दानवों के स्वभाव का भी साथ ही साथ वर्णन किया गया है। कवि ने अपनी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचय अनेक स्थलों पर दिया है। उदाहरणार्थ केवल एक स्थल में -

".....तूफान देखा है कभी ?
किस तरह आता प्रलय का नाद करता हुआ,
काल-सा बन में द्रुमों को तोड़ता, झकझोरता।
और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से,
उन सहस्त्रों पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं।
रुग्ण शाखाएँ द्रुमों की हरहरा कर टूटतीं,
टूट गिरते शावकों के साथ नीड़ विहंग के,
अंग भर जाते वनानी के निहित तरु, गुल्म से,
छिन्न फूलों के दलों से, पक्षियों की देह से।
पर शिराएँ जिस महीरुह की अतल में हैं गड़ी,
वह नहीं भयभीत होता क्रूर झंझावात से;

शीश पर बहता हुआ तूफान जाता है चला,
नोचता कुछ पत्र या कुछ डालियों को तोड़ता।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस ग्रंथ में हमें वर्तमान युग के मनुष्यों का सच्चा रूप, राजनीति का वास्तविक परिचय, साम्यवाद का संदेश, हृदय और मस्तिष्क का द्वंद्व और तर्क, सभी मिलता है। काव्योचित माधुर्य तथा कलात्मकता के साथ वीरोचित पौरुष की भावनाओं और मनोविज्ञान, हमारी वर्तमान स्थिति, आवश्यकताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रंथ हमारे युग को कवि दिनकर की एक उत्कृष्ट देन है। डा श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'कुरुक्षेत्र हमारे भारत का गौरव हैं।' श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है - "दिनकर ने मैथिलीशरण के आदर्श को, प्रसाद के सपनों में तुलसीदास की सरलता से लिखा है।" सप्तम सर्ग तो सन्यासियों और पलायनवादियों को कड़ी फटकार है। जीवन के रण में जुट जाना ही सच्चा पौरुष है। पूरा सप्तम सर्ग ही एक उदाहरण है।

12.4 कुरुक्षेत्र का संदेश

कवि दिनकरजी ने नेताओं के विषैले प्रचार (Propoganda) से हमें सावधान रहने को कहा है। युद्ध के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में -

".....तब रहता कहाँ अवकाश है, तत्व चिंतन का, गंभीर विचार का? आग की लपटें चुनौती भेजतीं, प्राणमय नर में छिपे शार्दूल को ।"

यहाँ क्रोध पाप और पुण्य नहीं है। मन की भावना ही किसी कर्म को पाप या पुण्य का रूप देती है। भगवान ने उस दिन सत्य ही कहा -

'मुख्य है कर्ता-हृदय की भावना,
मख्य है यह भाव, जीवन-युद्ध में, भिन्न हम कितने रहे निज कर्म से।"

अन्यायी का दमन करना, वीर होना और जो होना ही है उसके लिए दुःखी न होना ही मनुष्योचित कार्य हैं -

"जानता हूँ किन्तु जीने के लिए, चाहिए अंगार जैसी वीरता। पाप हो सकता नहीं

वह युद्ध है, जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।" "छीनता हो स्वत्व कोई और तू, त्याग तप से काम ले, यह पाप है, पुण्य है विच्छिन्न करदेना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है" और जो अनिवार्य है उसके लिए, खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है।"

जीवन की आवश्यकतायें सभी की पूरी होनी चाहिए"। समाज में जब तक विषमता रहेगी, साम्यवाद का प्रचार न होगा, तब तक शान्ति संभव नहीं -

"शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।"
" न्याय शांति क़ा प्रथम न्यास है, जब तक न्याय न आता,
जैसे भी हो, महल शान्ति का सुदृढ़ नहीं रह पाता।"

अपने अधिकारों के रक्षार्थ हिंसा भी पुण्य है और दानवों से अहिंसा कैसी ?

" किसने कहा,पाप है समुचित, स्वत्व-प्राप्ति - हित लड़ना!
उठा न्याय का खड्ग समर में अभय मारना-मरना ?"
"हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा हैं ?"

शूरता को कवि देश के लिए अत्यन्त उपयुक्त समझता है -

"शूर धर्म है शोणित पर धर कर चरण मचलना।"
तथा - "शूर धर्म है जग को अनुपम बलि का पाठ पढ़ाना।"
" सबसे बड़ा धर्म है नर का सदा प्रज्ज्वलित रहना,
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नहीं किसी का सहना।"

भाग्यवाद पर अविश्वास - कवि भाग्यवाद पर विश्वास नहीं करता। यह मूर्खो का ही विश्वास हो सकता है -

" ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा करते निरुद्यमी प्राणी,
धोते वीर कु-अंक भाल का बहा भ्रुवों से पानी।"

ये धूर्त भोली जनता से भाग्यवाद पर विश्वास करने को कहते हैं-

" भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।"

कवि कहता है कि सबका भाग्य एक है और वह है "परिश्रम"। पूँजीवाद तथा शोषण का आधार ही यह भाग्यवाद है - "एक मनुज संचित करता है, अर्थ पाप के बल से, और भोगता उसे दूसरा, भाग्यवाद के छल से।

नर-समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुज-बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथ्वी, विनीत नभ तल है।"

निराशों को आशा - पापी तथा धर्मात्मा निराश तथा विवश सभी का भविष्य उनके हाथ में है। पश्चात्ताप और आँसू से मनुष्य अपने किये पिछले पाप धो सकता है। अन्याय करने वाले भी क्रान्ति का झंडा उठा कर अत्याचारियों का दमन कर सकते हैं। आशा रखो -

"श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नव-विश्व का निर्माण।

एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास -
धर्मदीप्त, मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहाससमर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।"

याद रक्खो - " सत्य नहीं पातक की ज्वाला में मनुष्य का जलना।
सच है बल समेट कर उसका फिर आगे को चलना।"

मनुष्यत्व केपुनर्जीवन की भव्य आशा - जब तक मनुष्य के हृदय में पाप और अन्याय के प्रति घृणा होगी, तब तक उसमें फँसकर भी वह आगे बढ़ सकेगा। सच्चा पश्चात्ताप, कटु अनुभवों से शिक्षा लेने की प्रकृति, व्यथापूर्ण मार्मिक हृदय मनुष्य में होना चाहिए। उसकी आशा अवश्य पूर्ण होगी-

"पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का, जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज-प्रकृति से विदा सदा को दाहक द्वेष गरल हो।
बहे प्रेम की धार मनुज को वह अनवरत भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर बीज प्रेम का बोये।"

नव - विश्व के निर्माण की भावना - कवि का विश्वास है कि एक दिन अवश्य ही ऐसा आयेगा जब नये विश्व का निर्माण होगा, भले ही वह कितना ही दूर क्यों न हो !! यदि न्याय, स्नेह, ममता, परोपकार - वृत्ति समता को लोग अपना लें तो अवश्य ही नये विश्व का जन्म हो सकेगा -

श्रेय होगा मनुज का समता - विधायक ज्ञान,
स्नेह-संचित - न्याय पर नव-विश्व का निर्माण।"
यों तो - " है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर, नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।"

कारण स्पष्ट है कुछ महान व्यक्तियों ने जन्म लिया । उनका प्रभाव कुछ समय तक कुछ जनता पर रहा। पर मानव-स्वभाव की कमजोरियाँ मनुष्य को बार-बार धर दवाती हैं। आज का माँजा हुआ बर्तन कल फिर मैला हो जाता है। काश हमारा हृदय-परिवर्तन हो सके। तब तो नव विश्व का निर्माण अवश्य और स्थायी होगा।

इसके लिए युधिष्ठिर को भीष्म का दिया हुआ प्रबोध हमारा आदर्श होना चाहिए-

"हमारा आदर्श व्यक्तिगत उत्कर्ष या मोक्ष नहीं है।"
अपने लिए तो सभी जीते हैं, मनुष्य वह है जो 'तारता हुआ तरे,' जो दूसरे के लिए मरे। वह स्वार्थी है, भले ही वह साधु-वेषधारी हो यदि - "जग को छोड़ खोजता फिरता, अपनी एक अमरता।"
क्योंकि - " अकर्मण्य पण्डित हो जाता अमर नहीं रोने से,
आयु न होती क्षीण किसी की कर्म - भार ढोने से। "
अन्याय सहना कायरों का काम है । शक्तिशाली यदि क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा, तप, त्याग को अपना लें तो पृथ्वी धन्य हो जाय । भगवान करे यह हो -

' जिस दिन वध को समझ गयी रोयेगा,
आँसू से तन का रुधिर पंक धोयेगा ;

होगा पथ उस दिन मुक्त मनुज की जय का,
प्रारंभ भीत धरणी के भाग्योदय का।'

कवि चाहता है कि मनुष्य भौतिक उन्नति तथा भौतिक सुखों के अतिरिक्त आत्मिक विकास पर भी ध्यान दे । भौतिक उन्नति तो पर्याप्त हो चुकी । पर मनुष्य अभी -

'बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर, कर्म से पशु नीच।'

अतः अब तो -

'ले चुकी सुख-भाग समुचित से अधिक है देह,
देवता है माँगते मन के लिए लघु गेह।'

कवि ने सच्चे मनुष्य की परिभाषा की है -

'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है श्रेय ।
पर न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय ।
श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव का असीमित मानवों से प्रीत ;
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही ।'

कवि हमसे चाहता है कि हम शुभ्र ज्ञान-दीप जलायें तथा -

'राग में विरागी, राजदण्ड धर योगी बनो,
नर को दिखाओ पंथ त्याग - बलिदान से ;
दलित मनुष्य में मनुष्यता के भाव भरो,
दर्प की दुरग्नि करो दूर बलिदान से;
हिम-शीत भावना में आग अनुभूति की दो,
छीन लो हलाहल उदग्र अभिमान से ।'

कवि मनुष्यता को परम महत्व देता है । वह साम्यवाद का समर्थक है -

'ऊँचा उठ देखो तो किरीट, राज, धन, तप,
जप, याग, योग से मनुष्यता महान है;
धर्म सिद्ध रूप नहीं भेद-भिन्नता का यहाँ,
कोई भी मनुष्य किसी अन्य के समान है;
वह भी मनुष्य, है न धन और बल जिसे,
मानव ही वह जो धनी या बलवान है;
मिला जो निसर्ग-सिद्ध जीवन मनुष्य को है,
उसमें न दीखता कहीं भी व्यवधान है ।'

वह चाहता है कि या तो दुष्टों का दमन सामर्थ्यवान कर दें या निर्बलों को बलशाली बना दें ताकि वे आत्म-रक्षा कर सकें -

'रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको,
वृक-व्याघ्र-भीति से मही को मुक्त कर दो;
अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र;
दाँतों में कराल कालकूट विष भर दो;
बट की विवशता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो;
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराएँ तोड़ो, डालियाँ कतर दो ।'

कवि हमें कर्मण्यता का संदेश देता है -

'धर्मराज, सन्यास खोजना कायरता है मन की,
है सच्चा मनुजत्व ग्रंथियाँ सुलझाना जीवन की ।
दुर्लभ नहीं मनुज के हित निज वैयक्तिक सुख पाना,
किंतु कठिन है कोटि-कोटि मनुजों को सुखी बनाना ।'

कवि चाहता है कि हम दूसरों के लिए जियें । संसार को त्यागना नहीं, संसार के संघर्षों से लड़ना ही सच्ची वीरता है । मनुष्य वह है जो पृथ्वी के सुख-शान्ति-ऐश्वर्य में वृद्धि करे । ऐसा मनुष्य -

'होता विदा जगत से जग को कुछ रमणीय बनाकर,

साथ हुआ था जहाँ, वहाँ से, कुछ आगे पहुँचा कर ।'

कवि कहता है संसार त्यागने से कर्म नहीं छूटते । असली शत्रु तो मनुष्य का मन है। आत्म-नियंत्रण करना सीखो -

'बाहर नहीं शत्रु, छिप जाये जिसे छोड़ नर बन में,
जाओ जहाँ, वहीं पाओगे इसे उपस्थित मन में ।'

आज का विपन्न देश अभावों से पूर्ण है । इस समय व्यक्तिगत मोक्ष की मत सोचो -

'सुकृत-भूमि वन हीन न, मही यह देखो बहुत बड़ी है,
पग-पग पर साहाय्य हेतु दीनता विपन्न पड़ी है ।
इसे चाहिए अन्न, वसन, जल, इसे चाहिए आशा,
इसे चाहिए सुदृढ़ चरण, भुज, इसे चाहिए भाषा ।

और यदि मुक्ति-मोक्ष ही चाहते हो तो सबकी चाहो, स्वार्थी होकर केवल अपनी नहीं-

'यदि सन्यास शोध है इसका, तो मत युक्ति छिपाओ।
सब हैं विकल, सभी को, अपना मोक्ष मंत्र सिखलाओ।'

12.5 कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीयता तथा विश्व-प्रेम-विश्व-कल्लायण

कवि ने युद्ध की भयंकरता और युद्ध के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। युद्ध के कारणों पर भी उसने प्रकाश डाला है। वह युद्ध की भयंकरता, युद्ध के परिणामों पर संतप्त है। वह युद्ध की समस्या पर गंभीरता-पूर्वक मनन करता है। युद्ध से बचा नहीं जा सकता क्योंकि मनुष्य बहुत स्वार्थी है, प्रकृति से अत्याचारी, अनाचारी, शोषक और अन्यायी है। अच्छे, उदार, परोपकारी, धार्मिक, नीतिवान, ज्ञानी, त्यागी, सहिष्णु तथा महात्मा पुरुष भी होते हैं पर उनकी संख्या कम होती है। इसी से व्यास, गौतम, गाँधी आदि अनेक महापुरुष हुए जिन्होंने मनुष्यों को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। पर मनुष्य जहाँ पहले था वहीं अब भी है। पर कवि निराश नहीं है कि वह कहता है यदि हम

व्यक्तिगत स्वार्थ को भूल जायँ, वैयक्तिक सुख-सुविधाओं तथा दुख-कष्टों से ऊपर उठकर मानव-मात्र के कल्याण को सोचें तो कितना अच्छा हो! यदि हम विश्व में शान्ति चाहते हैं तो हमें ऐसा करना ही पड़ेगा। यही उसका संदेश है कवि के अनुसार - देश के लिये, राष्ट्र के लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है-

सुकृत-भूमि वनहीन यही यह देखो बहुत बड़ी है,
पग-पग पर साहाय्य हेतु दीनता विपन्न पड़ी है।
इसे चाहिए अन्न, वसन, बल, इसे चाहिए आशा,
इसे चाहिए सुदृढ़ चरण, भुज, इसे चाहिए भाषा।

तुम जनता के दुख को, व्यथा को दूर करों, यही तुम्हारा कर्तव्य है, यही धर्म है-

पोंछो अश्रु, उठो, द्रुत जाओ वन में नहीं, भुवन में,
होओ खड़े असंख्य नरों की, आशा बन जीवन में।

आज विरक्ति की, संन्यास की, वन जाने की, संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। इससे देश का पतन होगा, हानि होगी। विरक्ति को कवि कहता है कि अकर्मण्यता की छाया, वह निरे ज्ञान का छल है। तथा -

यह अनित्य कह-कह, कर देती स्वाद-हीन जीवन को,
निद्रा को जागर्ति बताती, जीवन अचल मरण को।

आज ऐसे ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। आज तो तुम मानव के कल्याणकारी कार्यों में लग जाओ, इसी में तुम्हें ब्रह्मानन्द मिलेगा -

वह सुख जो मिलता असंख्य, मनुजों का अपना होकर,
हँस कर उसके साथ हर्ष में, और दुःख में रोकर।

वह, जो मिलता भुजा पंगु की ओर बढ़ा देने से, कंधों पर दुर्बल, दरिद्र का, बोझ उठा लेने से।

यही सच्ची मनुष्यता है। जो तुम प्राप्त कर चुके हो, उसे दूसरों को भी प्राप्त करने में सहायता दो -

इसे चाहिए वह झाँकी जिसके तुम देख चुके हो,
इसे चाहिए वह मंजिल तुम आकर जहाँ रुके हो।

औ यदि मोक्ष ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है तो केवल अपना ही मोक्ष मत चाहो,

सबको ही वह परमपद पाने में सहायता दो -

'यदि सन्यास शोध है इसका तो मत युक्ति छिपातो,
सब हैं विकल, सभी को अपना मोक्ष-मंत्र सिखलाओ।

कवि पूछता है -

इन्हें छोड़ बन में जाकर तुम कौन शान्ति पाओगे ?
चेतन की सेवा तज जड़ को कैसे अपनाओगे

अतः

जाओ, शमित करो निज तप से नर के रागानल को,
बरसाओ पीयूष, करो अभिषिक्त दग्ध भूतल को।

कवि का ध्यान सदा अपने देश की वर्तमान दशा की ओर रहा है। विदेशी सत्ता के नीचे देश पिस रहा था। दमन का चक्र जोरों पर चल रहा था। लोग जेलों में जा रहे थे। पुलिस की लाठी, अश्रु-गैस तथा गोलियों के शिकार वे हो रहे थे। उन पर भीषण अत्याचार हो रहा था। सिर उठाने का अधिकार उन्हें नहीं था। देश में चारों ओर अशान्ति थी, असंतोष था, त्राहि-त्राही मची थी। विदेशी देश का शोषण कर रहे थे। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही भारत की आर्थिक तथा राजनीतिक दशा बिगड़ चुकी थी। न जाने कितने तरुण फाँसी पर लटक चुके थे। लोगों के पास रहने को घर न था, पहनने को वस्त्र न थे, खाने को अन्न न था। हमारे उपकारों का बदला अँग्रेजों **ने रौलेट ऐक्ट और जलियान वाले बाग के हत्याकाण्ड** से दिया। उसके बाद द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। युद्धोपरान्त देश की वही दशा थी जो महाभारत के पश्चात् देश की दशा थी। कवि कहता है -

क्षत-विक्षत है भरत-भूमि का अंग-अंग बाणों से,
त्राहि-त्राहि का नाद निकलता है असंख्य प्राणों से।
कोलाहल है, महा त्रास है, विपद आज है भारी,
मृत्यु-विवर से निकल चतुर्दिक तड़प रहे नर-नारी।

लोग हतोत्साहित थे, उनमें निराशा के भाव थे। अनेक कानूनों द्वारा

लोगों की जबान पर ताले डाल दिए गए थे। देश की दयनीय अवस्था थी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जनता ने अहिंसात्मक युद्ध किया, अहिंसात्मक लड़ाई लड़ी। सत्याग्रह - आन्दोलन अनेक बार चला। सन् १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन में गाँधी जी ने करो या मरो का आदेश दिया। आन्दोलन के दबाने को भीषण दमन-नीति का अंग्रेजी-सरकार ने सहारा लिया। देश में वही अशान्ति थी, वैसा ही दमन था, जनता के अधिकारों का वैसा ही हनन था जैसा दुर्योधन-दुःशासन के राज्यकाल में प्रजा पर था। भीष्म ने तत्कालीन राजाओं की दूषित मनोवृत्तियों, षड़यन्त्रों तथा कुटिलताओं का वर्णन किया है। भीष्म के मुख से कवि आज के देश का चित्र खींच रहा था। जनता जैसे द्वापर युग में एक ऐसे राजा की इच्छा करती थी जो तत्कालीन दमन, शोषण, अत्याचार, अनाचार आदि को बन्द कर सके। आज की दशा भीं वैसी ही थी। भीषण दमन का फल देश पर यह हुआ कि कुछ भारतीयों ने भी हिंसा का मार्ग अपनाया। कवि ने उनका समर्थन किया है। अहिंसा के ऊपर अधिक आस्था इसकी न थी। उसने कहा है -

हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है?
वेदों का दल सदा दानवों से हरता रहा है।

अपने अधिकारों के लिए लड़ना धर्म है। उन्हें प्राप्त करने को मारना-मरना पड़े भी कोई हानि नहीं, वरन, यही उचित है -

न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिले तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को, जीत, या कि खुद मर के।

न्याचार को सहने वाला अत्याचार करने वाले से भी अधिक पापी है। न्याचार सह कर वह अत्याचारी को और प्रोत्साहन अत्याचार करने का देता अत्याचार सहने से पौरुष क्षीण होता है, पुरुषत्व जाता है -

अत्याचार सहन करने का कुफल होकर खोता है,
पौरुष का आतंक मनुज कोमल होकर खोता है।

अत्याचारियों का तो कसकर विरोध करना चाहिए। जो अपने न्यायोचित

अधिकारों के लिए लड़ते हैं, वे वीर पुरुष हैं, श्रद्धा के पात्र हैं। जो अत्याचार सहने पर, पराजित होने पर भी क्षमा, दया, सहिष्णुता, अहिंसा की बात कहते हैं। वे अपनी कापुरुषता, अपनी निर्बलता, अपनी कायरता दिखाते हैं। वे अपना ही नहीं, देश और समाज की भारी हानि करते हैं -

प्रतिशोध से है होतीं शोर्य की शिखाएँ दीप्त,
प्रतिशोध-हीनता नरों में महापाप है।
छोड़ प्रतिवैर पीते मूक अपमान वे ही,
जिनमें न शेष शूरता का वहि-ताप है।
चोट खा सहिष्णु, रहेगा किस भाँति तीर,
जिसके निषंग में, करों में दृढ़ चाप है।
जीता के विभूषण सहिष्णुता क्षमा है, किन्तु,
हारी हुई जाति की सहिष्णुता क्षमा भिशाप, है।

कवि ने हिंसा का समर्थन किया है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जिन तरुण कान्तिकारियों ने हिंसा का मार्ग भी अपना लिया था कवि उनके पौरुष, उनकी वीरता, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा की सराहना करता है। अहिंसा बलवानों की शोभा है या फिर महात्माओं की। दुर्जन तो तुम्हारी विनम्रता, तुम्हारी दया, क्षमा को तुम्हारी दुर्बलता समझेगा। संसार में क्रूरों, अत्याचारियों तथा पशु-बुद्धि वालों की संख्या बहुत है। अभी शान्ति का स्वप्न दूर नभ में करता जगमग है। अभी अहिंसात्मककार्यों में सफलता मिलती नहीं दिखाई देती। दुष्टों पर अहिंसा, त्याग, तप, सहिष्णुता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता-

भूल रहे हो धर्मराज तुम अभी हिंस भूतल है,
खड़ा चतुर्दिक अहंकार है, खड़ा चतुर्दिक छल है।

कवि झूठी शान्ति का विरोध करता है। कृत्रिम शान्ति के चाहने वाले शासकों तथा बलवानों की दूषित भावनायें होती हैं। पर यह कृत्रिम शान्ति अधिक दिनों चल नहीं सकती, क्योंकि जिन पर यह बलपूर्वक थोपी जाती है। वे इससे मुक्ति पाने को छटपटाया करते हैं। ऐसों के आन्तरिक भावों,

आन्तरिक व्यथा, आन्तरिक जलन को समझने का प्रयत्न करो -

पर जिनकी अस्थियाँ चबाकर, शोणित पी कर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह समझो कुछ उनके मन का।

देश की तत्कालीन दशा का वर्णन कवि ने किया है। देश की पराधीनता का चित्र कवि ने अंकित किया है।

12.6 कुरुक्षेत्र में मानवता तथा अहिंसा का प्रभाव

भीषण नर-हत्या, रक्तपात तथा युद्ध की भयंकरता के कारण युधिष्ठिर का हृदय ग्लानि, व्यथा, पश्चात्ताप से भर गया है। वह युद्ध तथा उसके दुष्परिणामों का दोषी अपने को मानते हैं। उनका विचार है कि व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत लाभ के लिए ही उन्होंने युद्ध किया और उनके कारण ही इतनी नर-हत्या हुई। उनका प्रायश्चित करने वह राज्य को छोड़कर वन में विरक्ति की भावना से प्रेरित होकर जाना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि **त्याग, तप, सहिष्णुता, अहिंसा आदि से यदि मैंने काम लिया होता तो युद्ध का भीषण परिणाम देखने को मुझे न मिलता।** वे युद्ध से अहिंसा त्याग और तप के महत्व को अधिक मानते हैं। अपने हृदय की चिंता, अपनी मनोव्यथा, अपने विचार, अपना पश्चात्ताप तथा अपने प्रायश्चित करने के विचार को वह भीष्म से कहने के पूर्व सोचते हैं -

नर का बहाया रक्त, हे भगवान ! मैंने क्या किया ?

तथा -

यह महाभारत वृथा, निष्फल हुआ,
उफ ज्वलित कितना गरलमय व्यंग्य है।
पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे देश का।

फिर उन्होंने भीष्म से कहा -

' जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,

तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
जीत, नई नींव इतिहास की मैं धरता
और नहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता,
तो भी हाय, रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता।'

कवि के सामने महात्मा गाँधी का अहिंसात्मक सत्याग्रह भी था, जिस पर उसे विशेष आस्था नहीं थी। कवि युद्ध और हिंसा का समर्थन करता है। जब मानवता का यह शांति और अहिंसा-पालन का संदेश युधिष्ठिर हमें निरंतर देते हैं तब भीष्म उनकी मनोव्यथा को समझते हैं। युद्ध तथा अहिंसा-सम्बन्धी उनकी धारणाओं को सुनकर भीष्म ने मन में उनकी सराहना की थी। पर बाद में यह भी समझाया था कि संसार का काम शान्ति, तप, त्याग, सहिष्णुता, अहिंसा से नहीं चल सकता। देखिए -

'भीष्म ने देखा गगन की ओर,
मापते, मानो युधिष्ठिर के हृदय का छोर,
और बोले-हाय नर के भाग!
क्या कभी तू भी तिमिर के पार
उस महत् आदर्श के जग में सकेगा जग
एक नर के प्राण में जो हो उठा साकार है।
आज दुख से, खेद से, निर्वेद के आघात से'

पर युधिष्ठिर जैसे चिंतनशील, उदारमना तथा विशाल-हृदय धर्मात्मा कितने होते हैं। जब तक शोषक, अत्याचारी, अनाचारी, अन्यायी, स्वार्थी मनुष्यों की बहु-संख्या रहेगी, अहिंसा असफल रहेगी। अहिंसा से मानवों का सुधार हो सकता है, दानवों का नहीं। व्याघ्र के सामने अहिंसा दिखाओ तो वह तुम्हें खा ही लेगा। ऐसे पशु-बुद्धि वाले तथा क्रूर पुरुष तुम्हारी अहिंसा को

तुम्हारी कमजोरी समझेंगे।

कवि ने अपनी आस्था को भीष्म के मुख से कहा-

है मृषा तेरे हृदय की जल्पना,
युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है
क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं,
जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।

और फिर-

युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, मगर
जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।

अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए हिंसा करना, **युद्ध करना पुण्य है-**

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

शत्रु से प्रतिशोध लेना पुण्य है और वीरता तो शूर का गुण है। **तलवार के** भय से ही शत्रु सिर नहीं उठता है -

' जानता हूँ किन्तु, जीने के लिए
चाहिए अंगार जैसी वीरता,
पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है
जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।

अतः जहाँ एक ओर युधिष्ठिर युद्ध और हिंसा को अज्ञान, स्वार्थ तथा अभिमान का फल मानते हुए कहते हैं, वहाँ भीष्म हिंसा का समर्थन करते हैं। युधिष्ठिर फिर कहते हैं -

किन्तु हाय जिस दिन बोया गया युद्ध बीज
साथ दिया मेरा नहीं मेरे दिव्य ज्ञान ने,

उलट दी मति मेरी भीम का गदा ने और
पार्थ के शरासन ने, अपनी कृपाणा ने,
और जब अर्जुन को मोह हुआ रण बीज
बुझाती सिखा में दिया घृत भगवान ने,
सबकी सुबुद्धि, पितामह, हाय, मारी गई
सबको विनष्ट किया एक अभिमान ने।

वह अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को इन शब्दों में रखते हैं-

मैं भी सोचता हूँ जगत से कैसे उठे जिघांसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा प्रेम, अहिंसा,
जियें मनुज किस भाँति परस्पर होकर भाई-भाई,
कैसे रुके अदाह क्रोध का, कैसे रुके लड़ाई।
पृथ्वी पर हो साम्राज्य स्नेह का जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज प्रकृति से विदा सदा को दाहक द्वेष गरल हो।

साधारण मनुष्य अहिंसा में विश्वास न करते हैं, न उसे अपनाते हैं - ऐसा भीष्म का मत था। अहिंसा कायरों का आवरण है जो वे अपनी कायरता पर डालते हैं। भीष्म झुँझलाकर कहते हैं-

त्याग, तप, भिक्षा बहुत हूँ जानता मैं भी मगर,
त्याग, तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं,
या कि उसकी नीति, जिसके हाथ में शायक नहीं,
या मृषा पाखण्ड पर उस का पुरुष बलहीन का,
जो सदा भयभीत रहता युद्ध से यह सोचकर,
ग्लानिमय जीवन बहुत अच्छा, मरण अच्छा नहीं।

उन्होंने फिर झुँझलाते हुए अपना आदर्श युधिष्ठिर से कहा,

कायरों की बात कर मुझको जला मत, आज तक
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही,
जाती-मंदिर में जलाकर शूरता की आरती,

जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।

अहिंसा के भीष्म बुरा नहीं कहते हैं किन्तु वह वास्तविकता से आँख बंद करना नहीं चाहते। उनका तर्क हैं-

त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भींग कर
व्यक्ति का मन तो बली होता मगर,
हिंस पशु जब घेर लेते हैं उसे,
काम आता है बलिष्ट शरीर ही।

भीष्म युद्ध और हिंसा को प्रधानता देते हैं। साहिष्णुता, त्याग, अहिंसा, उदारता आदि से उन्हें विरोध नही है पर उनकी अव्यावहारिकता का कारण बताते हुए वे कहते हैं-

भूले भटके ही पृथ्वी पर वह आदर्श उतरता,
किसी युधिष्ठिर के प्राणों में ही स्वरूप है धरता।
किन्तु द्वेष के शिला-दुर्ग से बार-बार टकरा के,
रुद्ध मनुज के मनोदेश के लोह-द्वार के पा के,
घृणा, कलह, विद्वेष विविध तापों से आकुल होकर,
हो जाता जड़ जीव एक-दो का ही हृदय भिंगोकर।
क्योंकि युधिष्ठिर एक सुयोधन अगणित अभी यहाँ हैं,
बढ़े शान्ति की लता हाय वे पोषक द्रव्य कहाँ है

उनका विश्वास है कि विशव कभी अहिंसा को पूर्ण रूपेण मानने और उसके प्रयोग करने के योग्य नहीं होगा। मनुष्य पर स्थायी प्रभाव अहिंसा, सत्य, त्याग का नहीं पड़ता।

देखिए कवि कहता है -

भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर, या कि हो भगवान,
बुद्ध हों कि प्रशोक, गाँधी हों कि ईसु महान,
सिर झुका सबको सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र विचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान,
दग्ध कर पर को, स्वयं भी भोगता दुःख दाह,

जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

मनुष्य बहुत निर्बल प्राणी है-

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नर में भावना निष्काम।

इस प्रकार से अहिंसा के पक्ष और विपक्ष में कुरुक्षेत्र में बहुत कहा गया है। कोई निश्चित दृष्टिकोण जनता के सामने नहीं आ पाता है क्योंकि हिंसा और अहिंसा दोनों का समर्थन हो जाता है। पर तो भी एक संदेश निश्चित रूप से हमारे सामने भीष्म रखते हैं और वह यह कि मनुष्य को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। प्रयत्न किए जाओ, अपने कर्तव्य का पालन किए जाओ, एक समय ऐसा अवश्य आयेगा जब अहिंसा और मानवता की स्थापना समाज में हो जायगी। भीष्म ने अंत में कहा है-

आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से,
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से,
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी प्रौर,
तेज न बढ़ेगी किसी मानव का जीत से,
स्नेह-बलिदान होगे माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।

कवि का यह संदेश हमें मानवता करता है कि वह अहिंसा तथा त्याग, तप का विरोधीनहीं है, उसका यह संदेश हमें मानवता का संदेश देता है, वह चाहता है कि हिंसा और शोषण, दमन, युद्ध आदि संसार से उठ जायँ, पर अभी संसार इतना आध्यात्मिक दृष्टि से आगे नहीं बढ़ पाया है - पहले भी कभी नहीं बढ़ पाया था - कि हिंसा और युद्ध बिल्कुल बंद हो जायँ। अतः हिंसा और

युद्ध तो होते रहेंगे पर उसकी कामना है कि भगवान करे वे न हों।
प्रकृति पर, पंचतत्वों पर उसका अबाध अधिकार है -

शीश पर आदेश कर अवधार्य,
प्रकृति के सब तत्व करते हैं मनुज के कार्य,
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्द गुण अम्बर वहन संदेश।
नव्य नर की मुष्टि में विकराल,
हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल।
यह प्रगति निस्सीम, नर का यह प्रपूर्व विकास,
चरण-तल भूगोल, मुट्ठी में निखिअल आकाश।

रेडियो, वायरलेस, वायुयान, परमाणु-बम, राकेट क्या नही हैं मनुष्य के पास। पर कवि को इससे संतोष नहीं है। आज का मनुष्य, निर्मम, नीरस और मशीन हो गया है। आत्मा नामक कोई वस्तु उसके पास नहीं रह गई है। वह नास्तिक होता जा रहा है, प्रकृति का सौन्दर्य उसे आकर्षित नहीं करता है। संक्षेप में मनुष्य-मनुष्य नहीं रह गया है। उसमें भावनाओं का अभाव हो गया है। वह भौतिकता का दास हो गया है। आध्यात्मिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। यह है आज के युग का चित्र-

किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश,
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्रारा में करते दुखी हो देवता चीत्कार।

ज्ञान ही सब कुछ नहीं है। भावना का भी संसार में महत्व होता है,

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं माँगते कुछ स्नेह कुछ बलिदान,
मोम सी कोई मुलायम चीज
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज,

चारों ओर आज अशान्ति है, अभाव है। मनुष्य को सोचने-समझने का समय नहीं रह गया है,

धूम, कोलाहल, थकावट धूल के उस पार,
शीत जल से पूर्ण कोई मन्दगामी धार,
वृक्ष के नीचे जहाँ मान को मिले विश्राम,
आदमी काटे जहाँ कुछ छुट्टियाँ, कुछ शाम,
कर्म-संकुल लोक-जीवन से समय कुछ छीन।

12.8 बोध - प्रश्न

१ कुरुक्षेत्र के संदर्भ में **आधुनिक युग का प्रभाव कवि पर स्पष्ट पड़ा है-** इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

२ कुरुक्षेत्र में कविने गाँधीवाद को व्यक्त किया है - उत्तर दीजिए।

३ कुरुक्षेत्र का संदेश क्या है। सतर्क उत्तर लिखिए।

४ कुरुक्षेत्र - मानवीयता और अहिंसा का समन्वय है- समर्थन कीजिए।

NOTES

NOTES

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1,200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

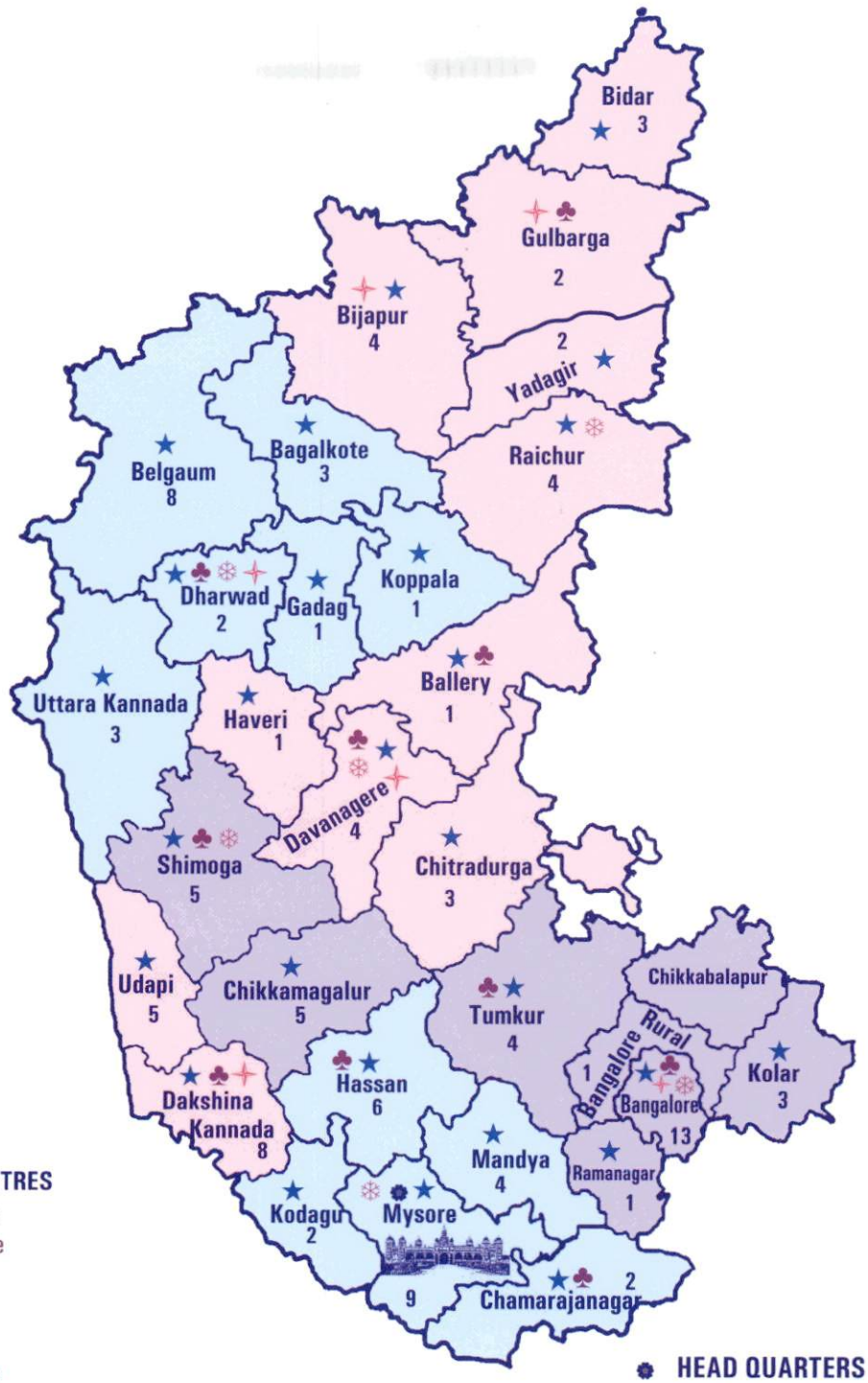

♣ REGIONAL CENTRES

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

● HEAD QUARTERS

★ Total Study Centres : 111

♣ Regional Centres : 10

❄ B.Ed Study Centres : 10

✦ M.Ed Study Centres : 08

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

INSTRUCTIONAL SYSTEM